धम्मपदं
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

धम्मपदं

डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

B. E. 2537
C. E. 1993

बुद्ध भूमि प्रकाशन, नागपुर

धम्मपदं

© बौद्ध प्रशिक्षण संस्थान

छठा संस्करण :
२४ अक्तूबर १९९३
२००० प्रतियाँ

प्रकाशक :
काशीनाथ मेश्राम
बुद्ध भूमि प्रकाशन
कामठी रोड, नागपुर – ४४१ ००२
फोन – ६८८७३२

मुद्रक :
विज्ञानेश्वर श्या. बनहट्टी,
श्रीनिवास मुद्रणालय,
'सुविचार भवन',
धनतोली, नागपुर – १२

पुस्तक प्राप्तिस्थान :
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन बुक डेपो
राहुल बाल सदन,
महेन्द्र नगर, नागपुर – ४४० ०१७.
फोन – ६४०३६०

दायक तथा प्रकाशक
दि कार्पोरेट बॉडी ऑफ दि बुध्दा एज्यूकेशन फाउंडेशन,

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org
This book is strictly for free distribution, it is not to be sold.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।

सम्पादकीय

'धम्मपदं' के पाँच संस्करण हो चुके हैं। बहुत दिनों के बाद यह छठा संस्करण बुद्ध भूमि प्रकाशन की ओर से प्रकाशित हो रहा है।

इस का प्रथम संस्करण सन १९३८ में छपा था। अनेकोंने इसके हिन्दी में अनुवाद किये हैं। किन्तु भन्तेजी ने इसका जिस ढंग से अनुवाद किया है, वह अनोखा है, एकदम सरल एवं साधारण सीखे पढ़े को भी आसानि से समझ में आनेलायक। कठिन विषय पढ़ना और सरल ढंग से लिखना उनकी खूबी थी।

भन्तेजी पंजाब में जन्मे (५-१-१९०५) पर उनका कार्यक्षेत्र भारत में सारनाथ, वर्धा (हिन्दीनगर) और अपने जीवन के उत्तरार्ध में नागपुर में रहा है। अपने जीवन के अंतिम दिनों तक (२२-६-१९८८) वे लिखतें रहे। राहुल सांकृत्यायन, भिक्षु जगदीश काश्यपकी परंपरा के भन्तेजी तीसरे व्यक्ति थे। सन १९६४ में जब राहुलजी के देहान्त का तार लंका में आया तो हम लोग केंडी के एक विहार में थे। भन्तेजी अंगुत्तर निकाय का अनुवाद कर रहे थे। तार पढ़कर एक क्षण आँखे मुंदकर मौन रहने के बाद कहने लगे – 'अब तो राहुलजी के हिस्से का भी लिखना है' और लिखने लगे। किन्तु उनके देहान्त के बाद इस प्रकार से कहनेवाला कोई नहीं रहा।

अब तक जितने भी धम्मपदं के संस्करण छपे, उनमें गाथा क्रमसंख्या

नहीं दी गई थी। इस संस्करण में शुरु से अंत तक गाथा क्रमसंख्या दी गई है। इससे पाठकों को याद रखने में सुविधा ही होगी।

इस छठे संस्करण को पुनःप्रकाशित करने में बुद्धभूमि प्रकाशन के आयु. काशीनाथ मेश्राम एवं राहुल बाल सदन की संचालिका आयुष्मती विमल आळे ने बहुत परिश्रम किया। उन्हीं के उत्साह से इसका प्रकाशन संभव हो सका। प्रेस से प्रूफ लाने-ले जाने में रवि मेश्राम और अनिल बनकर ने बड़ा परिश्रम किया। मेरे अंतेवासी भिक्षु अश्वघोष ने भी प्रूफशोधन में मदद की। श्रीनिवास मुद्रणालय, नागपुर के संचालक श्री. वि. श्या. बनहट्टी एवं उनके कर्मचारी वर्ग ने कमसे कम समय में इसका मुद्रण किया। वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

।। सभी का मंगल हो ।।

बुद्ध भूमि महाविहार
कामठी रोड, नागपुर
२४-१०-९३

भिक्षु मेधंकर
संपादक

दो शब्द

एक पुस्तक को और केवल एक पुस्तक को जीवनभर साथी बनाने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई है तो विश्व के पुस्तकालय में आपको धम्मपदं से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।

जिस प्रकार महाभारत में भगवद्गीता एक छोटी किन्तु अमूल्य कृति है, उसी प्रकार त्रिपिटक में धम्मपदं एक छोटा किन्तु मूल्यवान रत्न है। काल की दृष्टि से भगवद्गीता की अपेक्षा धम्मपदं प्राचीन-तर है।

भगवद्गीता की विशेषता है, कई दार्शनिक विचारों के समन्वय का प्रयत्न; इसीलिए गीता के टीकाकारों में आपस में मतभेद है; लेकिन धम्मपदं का एक ही मार्ग है, एक ही शिक्षा है। इस पथ के पथिक का आदर्श निश्चित है।

यह बात शायद सार्थक है कि गीता की अपेक्षा प्राचीनतर होते हुए भी धम्मपदं की केवल एक टीका—धम्मपदं-अट्ठकथा उपलब्ध है और भगवद्गीता की हैं जितने आचार्य उतनी भिन्न-भिन्न टीकाएँ।

भगवद्गीता की तरह धम्मपदं का बड़ा प्रचार है। प्राचीन काल में चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं में इसके अनुवाद हुए हैं। वर्तमान काल में संसार की सभी सभ्य भाषाओं में-अँग्रेजी, जर्मन, फ्रैंच आदि में-कई कई अनुवाद हो चुके हैं। श्री. अल्बर्ट, जे. एडमन्ड अपने अँग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं :-

'यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई, तो वह यही है।'

"इन पदों ने अनेक विचारकों के हृदय में चिन्तन की आग जलाई है। इन्हीं से अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मङ्गोलिया के भयानक कान्तार और हिमालय की अलंघ्य चोटियाँ लाँघकर भगवान् बुद्ध के चरणों से पूत भारतभूमि के दर्शनार्थ आए। इन्हीं को महाराज अशोक ने- जिन्होंने प्राणदण्ड का निषेध किया, गुलामी की प्रथा को कम किया, मनुष्यों और जानवरों तक के लिए अस्पताल खोले-शिलालेखों पर अंकित कराया। आज दो हजार वर्ष से रोम और ईसाइयत की संस्कृति का प्रचार होते रहने पर भी, युरोप और अमरीका के सभी विद्या-मन्दिरों में-कोपेनहेगन से कैम्ब्रिज तक और शिकागो से सेंटपीटर्सबर्ग (लेनिनग्राड़) तक-यह यूरोपियन और अमरीकन लोगों द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं।"

बँगला, मराठी, गुजराती आदि भारत की अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी में भी इसके अनेक अनुवाद हो चुके हैं।

इतने अनुवादों के बाद यह अनुवाद? प्रत्येक भक्त की अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने की इच्छा के सिवाय, इसे क्या कहें? और यों कहने को कह सकते हैं कि अभी तक जितने अनुवाद निकले उनमें कोई ऐसा नहीं जो धम्मपद-प्रेमियों का हर समय का साथी बन सके-रेल में गाडी में, हर समय उनकी जेब में रह सके। अँग्रेजी में बम्बई की बुद्ध सोसाइटी की ओर से प्रकाशित, मूल पालि सहित, प्रो. एन. के. भागवत का किया हुआ एक बहुत ही सुन्दर अनुवाद कुछ समय से हमारे सामने था। उसी से इस हिन्दी अनुवाद की प्रेरणा मिली और सौभाग्य से इसे करने के लिए गोरखपुर के श्रीमहावीरप्रसादजी 'पोद्दार' का आतिथ्य

भी एक ऐसा सुयोग मिल गया, जो ऐसे एकाग्रता–अपेक्षित कार्य्य के लिए आवश्यक था। उन्हीं के बाग में रहकर, उन्हीं के यहां हाथ के बने हुए कागज पर अथ से इति तक सारा धम्मपद लिखा गया। इस प्रकार इस पुण्य–कार्य में उनका बड़ा सहयोग रहा।

धम्मपद के अनुवाद में मैंने शब्दानुवाद के आग्रह को एक प्रकार से बिल्कुल छोड़े रक्खा। यही कोशिश रही कि अनुवाद–मात्र पढ़नेवाले को अनुवाद अनुवाद प्रतीत न हो। पता नहीं, कहाँ तक सफल हुआ।

लेकिन मूल की रस्सी से भी मैं बँधा ही रहा। अनुवाद परम्परागत अर्थों को दृष्टि में रखकर ही किया। हाँ, एक दो जगह किसी किसी गाथा का अर्थ वैसा भी हो गया है जैसा वह अपने जीवन में भासित हुआ।

मूलगन्धकुटी विहार
सारनाथ
२४–५–३८

आनन्द कौसल्यायन

विषय – सूची

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धम्मपदं

१ – यमकवग्गो

1. मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा ।
ततो'नं दुक्खमन्वेति चक्कं'व वहतो पदं ॥१॥

सभी धर्म (चैतसिक अवस्थायें) पहले मन में उत्पन्न होते हैं, मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं । जब आदमी मलिन मन से बोलता वा कार्य करता है, तब दुःख उसके पीछे पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे (गाड़ी के) पहिये बैल के पैरों के पीछे पीछे ।

2. मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा ।
ततो'नं सुखमन्वेति छाया' व अनपायिनी ॥२॥

सभी धर्म (चैतसिक अवस्थायें) पहले मन में उत्पन्न होते हैं, मन ही मुख्य है, वे मनोमय हैं । जब आदमी स्वच्छ मन से बोलता वा कार्य करता है, तब सुख उसके पीछे पीछे वैसे ही हो लेता है, जैसे कभी साथ न छोड़ने वाली छाया आदमी के पीछे पीछे ।

3. अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥३॥

'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया', जो ऐसी बातें सोचते रहते हैं, उनका वैर कभी शान्त नहीं होता ।

4. अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ।।४।।

'मुझे गाली दी', 'मुझे मारा', 'मुझे हराया', 'मुझे लूट लिया', जो ऐसी बाते नहीं सोचते, उन्हीं का वैर शान्त हो जाता है ।

5. न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ।।५।।

वैर, वैर से कभी शान्त नहीं होता; अवैर से ही वैर शान्त होता है—यही संसार का सनातन नियम है ।

6. परे च न विजानन्ति मयमेत्थ यमामसे ।
ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेधगा ।।६।।

अज्ञ लोग नहीं विचारते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे; जो विचारते हैं उन (पण्डितों) का वैर शान्त हो जाता है ।

7. सुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं ।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीनवीरियं ।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं 'व दुब्बलं ।।७।।

जो काम–भोग के जीवन में रत है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके काबू में नहीं हैं, जिसे भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान नहीं है, जो आलसी है, जो उद्योगहीन है, उसे मार वैसे ही गिरा देता है, जैसे वायु दुर्बल वृक्ष को ।

8. असुभानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु सुसंवुतं ।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं सद्धं आरद्धवीरियं ।
तं वे नप्पसहति मारो वातो सेलं 'व पब्बतं ।।८।।

जो काम-भोग के जीवन में रत नहीं है, जिसकी इन्द्रियाँ उसके काबू में हैं, जिसे भोजन की उचित मात्रा का ज्ञान है, जो श्रद्धावान्

तथा उद्योगी है, उसे मार वैसे ही नहीं हिला सकता, जैसे वायु हिमालय पर्वत को ।

9. अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावमरहति ॥९॥

जो अपने मन को स्वच्छ किए बिना काषाय–वस्त्र को धारण करता है, सत्य और संयम से रहित वह व्यक्ति काषाय–वस्त्र का अधिकारी नहीं है ।

10. यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहित ॥१०॥

जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो सदाचारी है, सत्य और संयम से युक्त वह व्यक्ति ही काषाय–वस्त्र का अधिकारी है ।

11. असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो ।
ते सारं नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कप्पगोचरा ॥११॥

असार (वस्तु) को सार और सार (वस्तु) को असार समझने वाले, झूठे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार (वस्तु) को नहीं प्राप्त करते ।

12. सारञ्च सारतो ञत्वा असारञ्च असारतो ।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्मासङ्कप्पगोचरा ॥१२॥

सार (वस्तु) को सार और असार (वस्तु) को असार समझने वाले, सच्चे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार (वस्तु) को प्राप्त करते हैं ।

13. यथागारं दुच्छन्नं वुट्ठी समतिविज्झति ।
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्झति ॥१३॥

यदि घर की छत ठीक न हो, तो जिस प्रकार उसमें वर्षा का प्रवेश हो जाता है, उसी प्रकार यदि (संयम का) अभ्यास न हो, तो मन में राग प्रविष्ट हो जाता है ।

14. यथागारं सुच्छन्नं वुट्ठी न समतिविज्झति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतविज्झति ।।१४।।

यदि घर की छत ठीक हो, तो जिस प्रकार उसमें वर्षा का प्रवेश नहीं होता, उसी प्रकार यदि (संयम का) अभ्यास हो, तो मन में राग प्रविष्ट नहीं होता ।

15. इध सोचति पेच्च सोचति
पापकारी उभयत्थ सोचति ।
सो सोचति सो विहञ्ञति
दिस्वा कम्मकिलिट्ठमत्तनो ।।१५।।

पापी मनुष्य दोनों जगह शोक करता है--यहाँ भी और परलोक में भी । अपने दुष्ट कर्म को देखकर वह शोक करता है, पीड़ित होता है ।

16. इध मोदति पेच्च मोदति
कतपुञ्ञो उभयत्थ मोदति ।
सो मोदति सो पमोदति
दिस्वा कम्मविसुद्धमत्तनो ।।१६।।

शुभ कर्म करने वाला मनुष्य दोनों जगह प्रसन्न रहता है-- यहाँ भी और परलोक में भी । अपने शुभ कर्म को देखकर वह मुदित होता है, प्रमुदित होता है ।

17. इध तप्पति पेच्च तप्पति
पापकारी उभयत्थ तप्पति ।
पापं मे कतंति तप्पति
भीय्यो तप्पति दुग्गतिङ्गतो ।।१७।।

पापी मनुष्य दोनों जगह सतप्त होता है, यहाँ भी और परलोक में भी । 'मैंने पाप किया है' सोच सन्तप्त होता है, दुर्गति को प्राप्त हो और भी सन्तप्त होता है ।

18. इध नन्दति पेच्च नन्दति
    कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति ।
    पुञ्ञं मे कतन्ति नन्दति
    भीय्यो नन्दति सुग्गतिंगतो ॥१८॥

शुभ कर्म करनेवाला मनुष्य दोनों जगह आनन्दित होता है——यहाँ भी और परलोक में भी । 'मैंने शुभ-कर्म किया है' सोच आनन्दित होता है, सुगति को प्राप्त हो और भी आनन्दित होता है ।

19. बहुँपि चे सहितं भासमनो
    न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
    गोपो व गावो गणयं परेसं
    न भागवा सामञ्ञस्स होति ॥१९॥

धर्म-ग्रन्थों का कितना ही पाठ करे, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्म-ग्रन्थों के अनुसार आचरण नहीं करता, तो दूसरोंकी गौवें गिनने वाले ग्वालों की तरह वह श्रमणत्व का भागी नहीं होता ।

20. अप्पम्पि चे सहितं भासमानो
    धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।
    रागञ्च दोसञ्च पहाय मोहं
    सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो ।
    अनुपादियानो इध वा हुरं वा
    स भागवा सामञ्ञस्स होति ॥२०॥

धर्म-ग्रन्थों का चाहे थोड़ा ही पाठ करे, लेकिन यदि राग, द्वेष तथा मोह से रहित कोई व्यक्ति धर्म के अनुसार आचरण करता है तो ऐसा बुद्धिमान, अनासक्त, यहाँ वहाँ (दोनों जगह) भोगों के पीछे न भागने-वाला व्यक्ति ही श्रमणत्व का भागी होता है ।

● ●

२ – अप्पमादवग्गो

21. अप्पमादो अमत–पदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ।।१।।

अप्रमाद अमृत–पद है, प्रमाद मृत्यु का पद । अप्रमादी मनष्य मरते नहीं, और प्रमादी मनुष्य मृत ही के समान होते हैं ।

22. एवं विसेसतो ञत्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियानं गोचरे रता ।।२।।

अप्रमाद के विषय में उसे इस विशेषता को जान, आर्यों के आचरण में रत, पण्डित–जन अप्रमाद में प्रसन्न होते हैं ।

23. ते झायिनो साततिका निच्चं दळ्ह–परक्कमा ।
फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ।।३।।

ध्यान करनेवाले, जागरूक, नित्य दृढ़ पराक्रम में लगे रहनेवाले धीर–जन ही अनुत्तर योग–क्षेम निर्वाण को प्राप्त करते हैं ।

24. उट्ठानवतो सतिमतो
सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो ।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो
अप्पमत्तस्स यसोभिवड्ढति ।।४।।

उद्योगी, जागरूक, पवित्र–कर्म करने वाले, सोच समझ कर काम करने वाले, संयमी, धर्मानुसार जीविका चलाने वाले, अप्रमादी मनुष्य के यश की वृद्धि होती है ।

25. उट्ठानेन'प्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च ।
दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति ॥५॥

बुद्धिमान् मनुष्य उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम द्वारा ऐसा द्वीप बनावे, जिसे बाढ़ डुबा न सके ।

26. पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना ।
अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं'व रक्खति ॥६॥

मूर्ख, दुर्बुद्धि प्रमाद करते हैं । बुद्धिमान् पुरुष श्रेष्ठधन की तरह अप्रमाद की रक्षा करता है ।

27. मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥७॥

प्रमाद मत करो । काम–भोगों में मत फँसो । प्रमाद–रहित हो हो ध्यान करने से विपुल सुख की प्राप्ति होती है ।

28. पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो ।
पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिं पजं ।
पब्बतट्ठो व भुम्मट्ठो धीरो बाले अवेक्खति ॥८॥

जब बुद्धिमान् आदमी प्रमाद को अप्रमाद से जीत लेता है, तो प्रज्ञा–रूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ वह शोकरहित धीर मनुष्य दूसरे शोक–ग्रस्त मूर्ख जनों की ओर उसी तरह देखता है, जैसे पर्वत पर खड़ा हुआ आदमी जमीन पर खड़े हुए आदमियों की ओर ।

29. अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो ।
अबलस्सं'व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो ॥९॥

प्रमादियों में अप्रमादी, सोते रहनेवालों में जागरूक, बुद्धिमान्-आदमी उसी प्रकार आगे बढ़ जाता है, जैसे शीघ्र गामी घोड़ा दुर्बल घोडे से ।

30. अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो ।
अप्पमादं पसंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥१०॥

अप्रमाद से ही इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ बना । इसलिए अप्रमाद की सदा प्रशंसा होती है और प्रमाद की निन्दा ।

31. अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
सञ्ञोजनं अणुं थूलं डहं अग्गीव गच्छति ॥११॥

अप्रमाद में रत रहने वाला या प्रमाद से भय खाने वाला भिक्षु आग की तरह, छोटे-मोटे बन्धनों को जलाता हुआ जाता है ।

32. अप्पमादरतो भिक्खु पमादे भयदस्सि वा ।
अभब्बो परिहाणाय निब्बाणस्सेव सन्तिके ॥१२॥

अप्रमाद में रत रहने वाले या प्रमाद से भय खाने वाले भिक्षु का पतन होना असम्भव है । वह निर्वाण के समीप है ।

● ●

३ – चित्तवग्गो

33. फन्दनं चपलं चित्तं दुरक्खं दुन्निवारयं ।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो व तेजनं ॥१॥

चित्त चंचल है, चपल है, दुर्–रक्ष्य है, दुर्–निवार्य है । मेधावी–पुरुष इसे उसी प्रकार सीधा करता है, जैसे वाण बनाने वाला वाँण को ।

34. वारिजो' व थले खित्तो ओकमोकत उब्भतो ।
परिफन्दति ' दं चित्तं मारधेय्यं पहातवे ॥२॥

जलाशय से निकालकर स्थल पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है। उसी प्रकार चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है ।

35. दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थ कामनिपातिनो ।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥३॥

कठिनाई से निग्रह किए जा सकनेवाले, शीघ्रगामी, जहाँ चाहे वहाँ चले जानेवाले चित्त का दमन करना अच्छा है । दमन किया गया चित्त सुख देनेवाला होता है ।

36. सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थकामनिपातिनं ।
चित्तं रक्खेय्य मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥४॥

बुद्धिमान् मनुष्य दुष्करता से दिखाई देने वाले, अत्यन्त चालक, जहाँ चाहे वहाँ चले जानेवाले चित्त की रक्षा करे । संभाल कर रक्खा गया चित्त सुख देने वाला होता है ।

37. दूरङ्गमं एकचरं असरीरं गुहासयं ।
ये चित्त सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना ॥५॥

जो दूरगामी, अकेले विचरनेवाले, निराकार, गुह्यआशय चित्त का संयम करेंगे, वे ही मारके बन्धन से मुक्त होंगे ।

38. अनवट्ठितचित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो ।
परिप्लवपसादस्स पञ्ञा न परिपूरति ॥६॥

जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सद्धर्म को जानता नहीं, जिसका चित्त प्रसन्न नहीं वह कभी प्रज्ञावान् नहीं हो सकता ।

39. अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो ।
पुञ्ञपापपहीणस्स नत्थि जागरतो भयं ॥७॥

जिसका चित्त मल-रहित है, जिसका चित्त स्थिर है, जो पाप-पुण्य-विहीन है, उस जागरूक पुरुष के लिए भय नहीं ।

40. कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा
नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा ।
योधेथ मारं पञ्ञायुधेन
जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया ॥८॥

शरीर को धड़े के समान (नश्वर) और चित्त को नगर के समान जान, प्रज्ञारूपी हथियार लेकर मार से युद्ध करे । जीत लेने पर भी चित्त की रक्षा करे तथा अनासक्त रहे ।

41. अचिरं वत'यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।
छुद्धो अपेतविञ्ञाणो निरत्थं' व कलिङ्गरं ॥९॥

अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेचना-रहित ही निरर्थक काठ की भाँति जमीन पर जा पड़ेगा ।

42. दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं ।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो' नं ततो करे ॥१०॥

शत्रु शत्रु की वा वैरी वैरी की जितनी हानि करता हैं, कुमार्ग की ओर गया हुआ चित्त मनुष्य की उससे कहीं अधिक हानि करता है।

43. न तं माता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च ञातका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो'नं ततो करे ॥११॥

न माता–पिता, न दूसरे रिश्तेदार, आदमी की उतनी भलाई करते हैं, जितनी भलाई सन्मार्ग की ओर गया हुआ चित्त करता हैं।

● ●

४ – पुप्फवग्गो

44. को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥१॥

कौन है जो देवताओं सहित इस यमलोक तथा इस पृथ्वी को जीतेगा? कौन चतुर-पुरुष अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा?

45. सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकञ्च इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति ॥२॥

शैक्ष ही है, जो देवताओं सहित इस यमलोक तथा इस पृथ्वी को जितेगा? चतुर शैक्ष अच्छी तरह से उपदिष्ट धर्म के पदों का पुष्प की भाँति चयन करेगा?

46. फेणूपमं कायमिमं विदित्वा
मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि
अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥३॥

इस काया को फेन के समान या मरु-मरीचिका के समान जान; मार के फंदे को तोड़, यमराज को न दिखाई देनेवाला बने।

47. पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ॥४॥

(राग आदि) पुष्पों के चुनने में आसक्त आदमी को मृत्यु वैसे ही बहा ले जाती है, जैसे सोये हुए गाँव को (नदी की) बड़ी बाढ़।

48. पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं ।
अतित्तं येव कामेसु अन्तको कुरते वसं ।।५।।

(राग आदि) पुष्पों के चुनने में असाक्त आदमी को यमराज काम--भोगों में अतृप्त अवस्था में ही अपने वश में कर लेता है ।

49. यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ।।६।।

जिस प्रकार फूल के वर्ण या गंध को बिना हानि पहुँचाये भ्रमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि गाँव में विचरण करे ।

50. न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं ।
अत्तनो' व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च ।।७।।

न दूसरों के दोष, न दूसरों के कृत--अकृत को देखे । (आदमी को चाहिए कि वह) अपने ही कृत--अकृत को देखे ।

51. यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं अगन्धकं ।
एवं सुभासिता वाचा अफला होति अकुब्बतो ।।८।।

जिस प्रकार सुन्दर वर्ण--युक्त (किन्तु) गन्ध--रहित पुष्प होता है, उसी प्रकार कथनानुसार कार्य्य न करने वाले की सुभाषित वाणी निष्फल होती है ।

52. यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवन्तं सगन्धकं ।
एवं सुभासित वाचा सफला होति सकुब्बतो ।।९।।

जिस प्रकार सुन्दर वर्ण--युक्त सुगन्ध--युक्त पुष्प होता है, उसी धकार कथनानुसार कार्य्य करनेवाले की सुभाषित वाणी सफल होती है ।

53. यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू ।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं ।।१०।।

जिस प्रकार कोई फूलों के ढ़ेर में से बहुत सारी मालायें गूंथे, उसी प्रकार संसार में पैदा हुये प्राणी को चाहिये कि वह बहुत से शुभ कर्म करे।

54. न पुप्फगन्धो पटिवातमेति
न चन्दनं तगरमल्लिका वा।
सतञ्च गन्धो पटिवातमेति
सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥११॥

न तो पुष्पों की सुगन्ध, न चंदन की सुगन्ध न तगर वा चमेली की सुगन्ध हवा के विरुद्ध जाती है; लेकिन सत्पुरुषों की सुगन्ध हवा के विरुद्ध भी जाती है। सत्पुरुष सभी दिशाओं में (अपनी सुगन्ध) फैलाते हैं।

55. चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गन्धजातानं सीलगन्धो अनुत्तरो ॥१२॥

चन्दन, तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगन्धियों से सदाचार की सुगन्ध बढ़कर है।

56. अप्पमत्तो अयं गन्धो या'यं तरगचन्दनी।
यो च सीलवतं गन्धो याति देवेसु उत्तमो ॥३१॥

यह जो तगर और चन्दन की गन्ध है यह अल्प मात्र है। सदाचरियों की उत्तम सुगन्ध देवताओं (तक) में फैलती है।

57. तेसं सम्पन्नसीलानं अप्पमादविहारिन।
सम्मदञ्ञाविमुत्तानं मारो मग्गं न विन्दति ॥१४॥

उन सदाचारियों, निरालस विचरनेवालों तथा ज्ञान द्वारा पूरी तरहसे मुक्त हूओं के मार्ग को मार नहीं योकता है।

58. तथा सकरधानस्मिं उज्झितस्मि महापथे ।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगन्धं मनोरमं ।।१५।।

59. एवं संकारभूतेसु अन्धभूते पुथुज्जने ।
अतिरोचति पञ्ञाय सम्मासम्बुद्धसावको ।।१६।।

जिस प्रकार महापथ पर फेंके हुए कूडे के ढ़ेर में सुन्दर सुगन्धित गुलाब का फूल पैदा हो, उसी प्रकार कूड़े के सदृश अन्धे अज्ञ जनों में सम्यक् सम्बुद्ध का शिष्य (अपनी) प्रज्ञा से प्रकाशमान होता है ।

● ●

५ – बालवग्गो

60. दीघा जागरतो रत्ति दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघो बालानं संसारो सद्धम्मं अविजानतं ॥१॥

जागते रहनेवाले की रात लम्बी हो जाती है । थके हुए का योजन लम्बा हो जाता है । इसी प्रकार सद्धर्म को न जानने वाले मूर्ख आदमी का संसार (आवागमन) लम्बा हो जाता है ।

61. चरञ्चे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो ।
एकचरियं दळ्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥२॥

यदि विचरण करते हुए, अपने से श्रेष्ठ वा अपने जैसे साथी को न पाए, तो आदमी दृढ़तापूर्वक अकेला ही रहे । मूर्ख आदमी की संगति (अच्छी) नहीं ।

62. पुत्ताम'त्थि धनमत्थि इति बालो विहञ्ञति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो धनं ॥३॥

'पुत्र मेरे हैं', 'धन मेरा है' सोच, मूर्ख आदमी दुःख पाता है । जब शरीर (तक) अपना नहीं, तो कहाँ पुत्र और कहाँ धन !

63. यो बालो मञ्ञति बाल्यं पण्डितो वापि तेन सो ।
बालो च पण्डितमानी, स वे बालो'ति वुच्चति ॥४॥

यदि मूर्ख आदमी अपने को मूर्ख समझे, तो उतने अंश में तो वह बुद्धिमान है । असली मूर्ख तो वह है जो मूर्ख होते हुए अपने आपको बुद्धिमान समझता है ।

64. यावजीवम्पि चे बालो पण्डितं पायिरुपासति ।
न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा ।।५।।

मूर्ख आदमी चाहे जन्म भर पण्डितों की संगति में रहे; वह सद्धर्म को नहीं जान सकता, जैसे कड़छी दाल के स्वाद को ।

65. मुहुत्तमपि चे विञ्ञू पण्डितं पयिरुपासति ।
खिप्पं धम्मं विजानाति जिव्हा सूपरसं यथा ।।६।।

बुद्धिमान् आदमी चाहें मुहूर्त भर ही पण्डितों की संगति में रहे; वह सद्धर्म को जान लेता है, जैसे जिह्वा दाल के रस को ।

66. चरन्ति बाला दुम्मेधा अमित्तेनेव अत्तना ।
करोन्ता पापकं कम्मं यं होति कटुकप्फलं ।।७।।

मूर्ख दुर्बुद्धि लोग पाप-कर्म करते हुए, जिसका फल कड़ुवा होता है, अपने आप अपने शत्रु की तरह आचरण करते हैं ।

67. न तं कम्मं कतं साधु यं कत्वा अनुतप्तति ।
यस्स अस्सुमुखो रोदं विपाकं पटिसेवति ।।८।।

उस काम का करना अच्छा नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पड़े, और जिसके फल को रोते हुए भोगना पड़े ।

68. तञ्च कम्मं कतं साधु यं कत्वा नानुतप्पति ।
यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ।।९।।

उस काम का करना अच्छा है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसका फल प्रसन्न-चित्त होकर भोगना मिले ।

69. मधुवा मञ्ञति बालो याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पापं अथ बालो दुक्खं निगच्छति।।१०।।

जब तक पाप-कर्म फल नहीं देता तब तक मूर्ख आदमी उसे मधु की तरह (मीठा) समझता है, लेकिन जब पाप-कर्म फल देता है, तब उसे दुःख होता है ।

70. मासे मासे कुसग्गेन बालो भुञ्जेथ भोजनं ।
न सो संखतधम्मानं कलं अग्घति सोळसिं ॥११॥

यदि मूर्ख आदमी महीने महीने पर (केवल) कुश की नोक से भी भोजन करे, तो भी वह धर्म के जानकारों के सोलहवें हिस्से के बराबर नहीं हो सकता ।

71. न हि पापं कतं कम्मं सज्जु खीरंव मुच्चति ।
डहन्तं बालमन्वेति भस्मच्छन्नोव पावको ॥१२॥

पापकर्म ताजे दूध की भाँति तुरन्त विकार नहीं लाता । वह, भस्म से ढ़की आग की तरह जलाता हुआ, मूर्ख आदमी का पीछा करता है ।

72. यावदेव अनत्थाय ञत्तं बालस्स जायति ।
हन्ति बालस्स सुक्कंसं मुद्धमस्स विपातयं ॥१३॥

मूर्ख आदमी का जितना ज्ञान है सब उसके लिए अनर्थकर होता है । उसकी मूर्धा (शिर = प्रज्ञा) को गिराकर उसके शुभ कर्मों का नाश कर देता है ।

73. असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु ।
आवासेसु च इस्सरियं पूजा परकुलेसु च ॥१४॥

74. ममेव कतमञ्ञन्तु गिही पब्बजिता उभो ।
ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिचि ।
इति बालस्स सङ्कप्पो इच्छा मानो च वड्ढति ॥१५॥

अप्रस्तुत वस्तु की चाह करता है, भिक्षुओं में बड़ा बनने की चाह करता है, मठों और विहारों का स्वामी बनने की चाह करता है, दूसरे कुलों में पूजित होना चाहता है, 'गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों मेरा ही किया मानें' चाहता है, 'कृत्य अकृत्यों में मुझ पर ही निर्भर रहें' चाहता है—इसी प्रकार के संकल्प करनेवाले मूर्ख आदमी की इच्छाएँ और अभिमान बढ़ता है ।

75. अञ्ञा हि लाभूपनिसा अञ्ञा निब्बान–गामिनी ।
एवमेतं अभिञ्ञाय भिक्खू बुद्धस्स सावको ।।
सक्कारं नाभिनन्देय्य विवेकमनुब्रूहये ।।१६।।

लाभ का रास्ता दूसरा है और निर्वाण का दूसरा । इसे इस प्रकार जानकार बुद्ध का शिष्य भिक्षु सत्कार की इच्छा न करे, विवेक (एकान्तचर्या) की वृद्धि करे ।

● ●

६ – पण्डितवग्गो

76. निधीनं'व पवत्तारं यं पस्से वज्ज–दस्सिनं ।
निग्गय्हवादिं मेधाविं तादिसं पण्डितं भजे ।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥१॥

जो आदमी अपना दोष दिखानेवाले को (भूमि में छिपे)) धन दिखानेवाले की तरह समझे, जो संयम के समर्थक, मेधावी, पण्डित की संगति करे, उस आदमी का कल्याण ही होता है, अकल्याण नहीं ।

77. ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये ।
सतं हि सो पियो होति असतं होति अप्पियो ॥२॥

जो उपदेश दे, अनुशासन करे, अनुचित कार्य्य से रोके, वह सत्पुरुषों को प्रिय होता है, असत्पुरुषों को अप्रिय ।

78. न भजे पापके मित्ते न भजे पुरिसाधमे ।
भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरसुत्तमे ॥३॥

न दुष्ट मित्रों की संगति करे, न अधम पुरुषों की संगति करे । अच्छे मित्रों की संगति करे, उत्तम पुरुषों की संगति करे ।

79. धम्मपीती सुखं सेति विप्पसन्नेन चेतसा ।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥४॥

धर्म (रस) का पान करनेवाला प्रसन्नचित्त हो सुख–पूर्वक सोता है । पण्डित (जन) सदा आर्यों के बताये धर्म में रमण करते हैं ।

80. उदकं हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥५॥

(पानी) ले जानेवाले पानी ले जाते हैं, बाण बनानेवाले बाण नवाते हैं, बढ़ई लकड़ी नवाते हैं और पण्डितजन अपना दमन करते है ।

81. सेलो तथा एकघनो वातेनं न समीरति ।
एवं निन्दापसंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ।।६।।

जिस प्रकार ठोस पहाड़ हवा से नहीं ड़ोलता, उसी प्रकार पण्डित निन्दा और प्रशंसा से कम्पित नहीं होते ।

82. यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो ।
एवं धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ।।७।।

पण्डित जन धर्म को सुनकर अथाह, स्वच्छ, स्थिर तालाब की तरह प्रसन्न चित्त होते हैं ।

83. सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजन्ति
न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।
सुखेन पुट्ठा अथवा दुखेन
न उच्चावचं पण्डिता दस्सयन्ति ।।८।।

सत्पपुरुष कहीं आसक्त नहीं होते । वह काम भोगों के लिए बात नहीं बनाते । उन्हें चाहे दुःख हो, चाहे सुख, पण्डितजन विकार को प्राप्त नहीं होते ।

84. न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं ।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पञ्ञवा धम्मिको सिया ।।९।।

(अधर्म से) न अपने लिये पुत्र धन या राष्ट्र की इच्छा करे (न दूसरे के लिये) । जो अधर्म से अपनी उन्नति नहीं चाहता वही सदाचारी हैं, प्रज्ञावान है, धार्मिक है ।

85. अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ।।१०।।

जो पार पहुँचते हैं वह तो मनुष्यों में थोड़े ही हैं, बाकी आदमी तो किनारे पर ही दौड़ते रहते हैं ।

86. ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो ।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं ।।११।।

जो भली भाँति स्पष्ट कर दिये गये धर्म के अनुसार आचरण करते हैं, वही मृत्यु गृहीत दुस्तर (संसार सागर) को पार करेंगे ।

87. कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भावेथ पण्डितो ।
ओका अनोकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ।।१२।।

88. तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो ।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पण्डितो ।।१३।।

पाप-कर्म को छोड़ पण्डित जन शुभ कर्म करे। घर से बे-घर हो दूर जा एकान्त-सेवन करे। काम भोगों को छोड़ सर्वस्व त्यागी बन वहीं रत रहने की इच्छा करे। पण्डित (जन) अपने चित्त के मैल को दूर करें।

89. येसं सम्बोधि-अङ्गेसु सम्मा चित्तं सुभावितं ।
आदान-पटिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता ।
खीणासवा जुतीमन्तो ते लोके परिनिब्बुता ।।१४।।

जिनका चित्त सम्बोधि-अङ्गों में भली भाँति अभ्यस्त है, जो परिग्रह के परित्यागपूर्वक अपरिग्रह में रत हैं, चित्त-मैल से रहित ऐसे द्युतिमान् (पुरुष) ही लोक में निर्वाण-प्राप्त हैं ।

● ●

७ – अरहन्तवग्गो

90. गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।
सब्बगन्थप्पहीणस्स परिलाहो न विज्जति ॥१॥

जिसका मार्ग समाप्त हो गया, जो शोकरहित है, जो सर्वथा विमुक्त है, जिसकी सभी ग्रन्थियाँ क्षीण हो गई, उसके लिये परिताप नहीं।

91. उय्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा ' व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥

स्मृतिमान् उद्योग करते हैं। वे घर में नहीं रहते। जिस प्रकार हंस क्षुद्र जलाशय को छोड़ जाते हैं, उसी प्रकार वे घर को छोड़कर चले जाते हैं।

92. येसं सन्निचयो नत्थि ये परिञ्ञातभोजना ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे 'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥३॥

जो संचय नहीं करते, जिनको भोजन की उचित मात्रा ज्ञात है, शून्यता–स्वरूप तथा निमित्त–रहित निर्वाण जिनके गोचर है, उनकी गति उसी प्रकार अज्ञेय है जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की गति।

93. यस्सा'सवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सितो ।
सुञ्ञतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।
आकासे 'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥४॥

जिसके आश्रव क्षीण हो गये, जो आहार में आसक्त नहीं, शून्यता स्वरूप तथा निमित्त–रहित नर्वाण जिसके गोचर है, उसकी गति उसी प्रकार अज्ञेय है जैसे आकाश में पक्षियों की गति।

94. यस्सिन्द्रियाणि समथं गतानि,
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स,
देवापि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥५॥

सारथी द्वारा सुशिक्षित घोड़ों की तरह जिसकी इन्द्रियाँ शांत हैं, जिसका अभिमान नष्ट हो गया है, जो आश्रव-रहित है, ऐसे (पुरुष) की देवता भी स्पृहा करते हैं ।

95. पठवीसमो नो विरुज्झति इन्दखीलूपमो तादि सुब्बतो ।
रहदो'व अपेतकद्दमो संसारा न भवन्ति तादिनो ॥६॥

इन्द्रकील के समान (अचल) व्रतधारी उसी तरह क्षुब्ध नहीं होता जैसे पृथ्वी । उस स्थिर पुरुष में उसी तरह संसार (मल) नहीं रहता जैसे कर्दम-रहित सरोवर में ।

96. सन्तं अस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।
सम्मदञ्ञाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥७॥

उपशान्त, ज्ञान द्वारा पूरी तरह मुक्त हुए उस स्थिर चित्त (पुरुष) का मन शान्त होता है, वाणी शान्त होती है ।

97. अस्सद्धो अकतञ्ञू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।
हतावकासो वन्तासो स वे उत्तमपोरिसो ॥८॥

जो (अन्ध-) श्रद्धा से रहित है, जिसने निर्वाण को जान लिया है, जिसने बन्धन को काट दिया है, जिसके (पुनर्जन्म की) गुंजायश नहीं, जिसने (विषय-भोग की) आशा को त्याग दिया है वही उत्तम पुरुष है ।

98. गामे वा यदि वा रञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले ।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं ॥९॥

गाँव हो या जङ्गल, नीची भूमि हो या (ऊँचा) स्थल, जहाँ अर्हत् लोक विहार करते हैं वही रमणीय-भूमि है।

99. रमणीयानि अरञ्ञानि यत्थ न रमते जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१०॥

रमणीय वन जहाँ साधारण लोग रमण नहीं करते वहाँ वीतरागी रमण करते है, क्योंकि वह काम-भोगों के पीछे दौड़नेवाले नहीं होते।

● ●

८ – सहस्सवग्गो

100. सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता ।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥१॥

अनर्थकारी-पदोंसे युक्त सहस्रों वाणियों से एक उपयोगी पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त हो ।

101. सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसंहिता ।
एकं गाथापदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥२॥

अनर्थकारी-पदों से युक्त सहस्रों गाथाओं से एक उपयोगी गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त हो ।

102. यो च गाथा सतं भासे अनत्थपदसंहिता ।
एकं धम्मपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति ॥३॥

अनर्थकारी-पदों से युक्त कोई सौ गाथायें कहे । उनसे धर्म का एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति प्राप्त होती है ।

103. यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।
एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो ॥४॥

एक आदमी संग्राम में लाखों आदमियों को जीत ले, और एक दूसरा अपने आपको जीत ले । यह दूसरा आदमी ही (सच्चा) संग्राम विजयी है ।

104. अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा ।
अत्तदन्तस्स पोसस्स निच्चं सञ्ञतचारिनो ॥५॥

105. नेव देवो न गंधब्बो न मारो सह ब्रह्मुना ।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुनो ॥६॥

दूसरों को जीतने की अपेक्षा अपने को ही जीतना श्रेष्ठ है। जिस आदमी ने अपने आपको दमन कर लिया, जो अपने को नित्य संयत रखता है; उस आदमी की जीत को न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा सहित मार ही, हार में परिणत कर सकते हैं।

106. मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥७॥

एक आदमी सहस्र (दक्षिणा) दे महिने महिने सौ वर्ष तक यज्ञ करे, और एक दूसरा आदमी किसी परिशुद्ध–मनवाले का मुहूर्त्त भर भी सत्कार करे। सौ वर्ष के हवन से वह मुहूर्त्त भर की पूजा ही श्रेष्ठ है।

107. यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुतं ॥८॥

एक आदमी सौ वर्ष तक वन में यश करे, और एक दूसरा आदमी किसी परिशुद्ध मनवाले का मुहूर्त्त भर भी सत्कार करे। सौ वर्ष के यज्ञ से वह मुहूर्त भर की पूजा ही श्रेष्ठ है।

103. यं किंचि यिट्ठं च हुतं च लोके,
संवच्छरं यजेथ पुञ्ञपेक्खो
सब्बम्पि तं न चतुभागमेति,
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो ॥९॥

पुण्य की इच्छा से वर्षभर जो यज्ञ और हवन करे, वह सब सरल-चित्त पुरुष को किए गये अभिवादन के चौथे हिस्से के बराबर भी नहीं है। सरल चित्त पुरुषों को किया गया अभिवादन ही श्रेष्ठ है।

109. अभिवादनसीलिस्स निच्चं बद्धापचायिनो ।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुखं बलं ॥१०॥

जो अभिवादनशील है, जो नित्य बड़ों की सेवा करता है, उसकी आयु, वर्ण, सुख तथा बल में वृद्धि होती है।

110. यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स झायिनो ॥११॥

दुराचारी और चित्त की एकाग्रता से हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से सदाचारी और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

111. यो च वस्ससतं जीवे दुप्पञ्ञो असमाहितो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पञ्ञावन्तस्स झायिनो ॥१२॥

दुष्प्रज्ञ और चित्त की एकाग्रता-हीन व्यक्ति के सौ वर्ष के जीवन से प्रज्ञावान् और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

112. यो च वस्ससतं जीने कुसीतो हीनवीरियो ।
एकाहं जीवितं सेय्यो विरियमारभतो दल्हं ॥१३॥

आलसी और अनुद्योगी के सौ वर्ष के जीवन से दृढतापूर्वक उद्योग करनेवाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

113. यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं उदयव्ययं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयव्ययं ॥१४॥

उत्पत्ति और विनाश पर विचार न करते हुए सौ वर्ष तक जीने से उत्पत्ति और विनाश पर विचार हुये एक दिन का जीना श्रेष्ठ है।

114. यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं अमतं पदं ।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो अमतं पदं ॥१५॥

अमृत पद (निर्वाण) को न देखते हुए सौ वर्ष तक जीने से अमृत-पद को देखते हुए एक दिन जीना श्रेष्ठ है।

115. यो च वस्ससतं जीवे अपस्सं धम्ममुत्तमं।
एकाहं जीवितं सेय्यो पस्सतो धम्ममुत्तमं ॥१६॥

उत्तम धर्म की ओर ध्यान न देते हुए सौ वर्ष के जीने से उत्तम धर्म की ओर ध्यान देते हुए एक दिन जीना श्रेष्ठ है।

● ●

९ – पापवग्गो

116. अभित्थरेथ कल्याणे पापा चित्तं निवारये ।
दन्धं हि करोतो पुञ्ञं पापस्मिं रमते मनो ॥१॥

शुभ कर्म करने में जल्दी करे, पापों से मन को हटाये । शुभ कर्म करने में ढील करने पर मन पाप में रत होने लगता है ।

117. पापञ्चे पुरिसो कयिरा न तं कयिरा पुनप्पुनं ।
न तम्हि छन्दं कयिराथ दुक्खो पापस्स उच्चयो ॥२॥

यदि पाप करे तो उसे फिर फिर न करे । उसमें रत न होवे । पाप का संचय दुःख का कारण होता है ।

118. पुञ्ञञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनप्पुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्ञस्स उच्चयो ॥३॥

यदि शुभ कर्म करे, तो उसे फिर फिर करे । उसमें रत होवे । पुण्य का संचय सुख का कारण होता है ।

119. पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पापं अथ पापो पापानि पस्सति ॥४॥

पापी को भी तब तक भला लगता है, जब तक पाप फल नहीं देता । जब पाप फल देता है, तब उसे बुरा लगता है ।

120. भद्रोपि पस्सति पापं याव भद्रं न पच्चति ।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रो भद्राणि पस्सति ॥५॥

पुण्य करनेवाले को भी तब तक बुरा लगता है जब तक पुण्य फल नहीं देता । जब पुण्य फल देता है तब उसे अच्छा लगता है ।

121. मावमञ्ञेथ पापस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
पूरति बालो पापस्स थोक–थोकम्पि आचिनं ।।६।।

'मेरे पास न आयेगा' सोच पाप की अवहेलना न करे। बूंद बूंद पानी गिरने से घड़ा भर जाता हैं। मूर्ख आदमी थोड़ा थोड़ा पाप इकट्ठा कर लेता है।

122. मावञ्ञेथ पुञ्ञस्स न मन्तं आगमिस्सति ।
उदबिन्दुनिपातेन उदकुम्भोपि पूरति ।
पूरति धीरो पुञ्ञस्स थोक–थोकम्पि, आचिनं ।।७।।

'मेरे पास न आयेगा' सोच पुण्य की अवहेलना न करे। बूँद बूँद पानी गिरने से घड़ा भर जाता है। धैर्य्यवान् थोड़ा थोड़ा करके पुण्य संचय कर लेता है।

123. वाणिजो' व भयं मग्गं अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामो' व पापानि परिवज्जये ।।८।।

थोड़े काफिले और बहुत धनवाला व्यापारी भययुक्त मार्ग को छोड़ देता है, अथवा जीने की इच्छावाला विष को छोड़ देता है, उसी प्रकार (मनुष्य) पापों को छोड़ दे।

124. पाणिम्हि चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विसं ।
नाब्बणं विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ।।९।।

यदि हाथ में घाव न हो, तो हाथ में विष लिया जा सकता है, क्योंकि घाव–रहित हाथ में विष नहीं चढ़ता। इसी प्रकार न करनेवाले को पाप नहीं लगता।

125. यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सति
सुद्धस्स पोसस्स अनङ्गणस्स ।

तमेव बालं पच्चेति पापं
सुखुमो रजो' पटिवातं' व खित्तो ॥१०॥

जो शुद्ध, निर्मल, दोष-रहित मनुष्य को दोषी ठहराता है, उस दोषी ठहरानेवाले मूर्ख को ही पाप लगता है। जैसे हवा की दिशा के विरुद्ध फेंकी हुई सूक्ष्म धूलि फेंकनेवाले पर ही पड़ती है।

126. गब्भमेके उप्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो ।
सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा ॥११॥

कोई संसार में उत्पन्न होते हैं। पापी नरक में जाते हैं। शुभकर्मी स्वर्ग में जाते हैं, और जो चित्त के मलों से रहित हैं वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

127. न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जति सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितो मुञ्चेय्य पापकम्मा ॥१२॥

न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के गह्वर में-संसार में कहीं कोई ऐसी जगह नहीं है, जहाँ रहकर आदमी पाप-कर्म के फल से बच कके।

128. न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे
न पब्बतानं विवरं पविस्स ।
न विज्जति सो जगतिप्पदेसो
यत्थट्ठितं न प्पसहेय्य मच्चू ॥१३॥

न आकाश में, न समुद्र की तह में, न पर्वतों के गह्वर में—संसार में कहीं कोई ऐसी जगह नहीं जहाँ रहनेवाला मृत्यु से बच सके।

● ●

१० — दण्डवग्गो

129. सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥१॥

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को मृत्यू से भय लगता है । इसलिए सभी को अपने जैसा समझ न किसी को मारे, न मरवाये ।

130. सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं ।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥२॥

सभी दण्ड से डरते हैं, सभी को जीवन प्रिय है । इसलिए सभी को अपने जैसा समझ न किसी को मारे, न मरवाये ।

131. सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥३॥

सुख की चाह से जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को डण्डे से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता है ।

132. सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुखं ॥४॥

सुख की चाह से जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को डण्डे से नहीं मारता, वह मरकर सुख पाता है ।

133. मा वोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं ।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु तं ॥५॥

किसी से कठोर वचन मत बोलो, दूसरे तुमसे कठोर वचन बोलेंगे । दुर्बचन दु:खदायी होते हैं । बोलने से बदले में तुम दण्ड पाओगे ।

134. सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा ।
एस पत्तोसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ।।६।।

यदि पीटे जाने पर (टूटे) कांसे की तरह अपने आपको निःशब्द रक्खो, तो तुमने निर्वाण पा लिया, तुम्हारे लिए कलह नहीं रहा ।

135. यथा दण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं ।
एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेन्ति पाणिनं ।।७।।

जैसे ग्वाला गायों को डण्डे से चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को ले जाते हैं ।

136. अथ पापानि कम्मानि करं बालो न बुज्झति ।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो अग्गिदड्ढोव तप्पति ।।८।।

पाप-कर्म करता हुआ मूर्ख आदमी नहीं बूझता । पीछे दुर्बुद्धि अपने उन्हीं कर्मों के कारण आग से जलते हुए की तरह तपता है ।

137. यो दण्डेन अदण्डेसु अप्पदुट्ठेसु दुस्सति ।
दसन्नमञ्ञतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ।।९।।

138. वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदनं ।
गरुकं वापि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणे ।।१०।।

139. राजतो वा उपस्सग्गं अब्भक्खानं व दारुणं ।
परिक्खयं व ञातीनं भोगानं व पभङ्गुरं ।।११।।

140. अथवस्स अगारानि अग्गी डहति पावको ।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो निरयं सोपपज्जति ।।१२।।

जो दण्डरहितों को दण्ड से पीड़ित करता है या दोषरहितों को दोष (लगाता है), उसे इन दस बातों में से कोई एक बात शीघ्र ही होती है- (१) तीव्र वेदना, (२) हानि, (३) अंग-भंग, (४) भारी बीमारी, (५) पागलपन, (६) राजदण्ड (७) कड़ी निन्दा, (८)

रिश्तेदारों का विनाश, (९) भोगों का क्षय, (१०) आग उसके घर को जला देती है। शरीर छूटने पर वह पुष्प्रज्ञ नरक में उत्पन्न होता है।

141. न नग्गचरिया न जटा न पङ्का
नानासका थण्डिलसायिका वा ।
रज्जो च जल्लं उक्कुटिकप्पधानं
सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं ॥१३॥

न नंगे रहने से, न जटा (धारण करने) से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कडी भूमि पर सोने से, न धूल लपेटने से, न उकड़ू बैठने से ही उस आदमी की शुद्धि होती है, जिसके सन्देह बाकी हैं।

142. अलङ्कतो चेपि समं चरेय्य
सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्ड
सो ब्राह्मणो सो समणो सो स भिक्खू ॥१४॥

अलङ्कृत होते हुये भी यदि उसका आचारण सम्यक् है, यदि वह शान्त है, यदि वह दान्त है, यदि वह नियत ब्रह्मचारी है और यदि उसने सभी प्राणियों के प्रति दण्ड त्याग दिया है, तो वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, वही भिक्षु है।

143. हिरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मि विज्जति ।
यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्रो कसामिव ॥१५॥

लोक में कुछ आदमी ऐसे होते हैं, जिन्हें उनकी अपनी लज्जा निषिद्ध-कर्म करने से रोक लेती हैं। जिस प्रकार उत्तम घोड़ा चाबुक को नहीं सह सकता, उसी प्रकार वे निन्दा को नहीं सह सकते।

144. अस्सो यथा भद्रो कसानिविट्ठो
आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।
सद्धाय सीलेन च विरियेन च

समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।
सम्पन्नविज्जाचरणा पतिस्सता
पहस्सथ दुक्खमिदं अनप्पकं ॥१६॥

चाबुक खाये उत्तम घोड़े की तरह प्रयत्नशील और संवेग-युक्त बनो। श्रद्धा, शील, वीर्य्य, समाधि तथा धर्म-विनिश्चय से युक्त हो विद्यावान् और आचारवान् बन, स्मृति को बनाये रख, उस महान् दुःख का अन्त करो।

145. उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारुं नमयन्ति तच्छका
अत्तानं दमयन्ति सुब्बता ॥१७॥

(पानी) ले जाने वाले पानी ले जाते हैं, बाण बनानेवाले बाण नवाते है, बढ़ई लकडी नवाते हैं और सुव्रती (जन) अपना दमन करते हैं।

● ●

११ – जरावग्गो

146. कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ।।१।।

सब कुछ जल रहा है, तुहें हँसी और आनन्द सूझता है ? अन्धकार से घिरे रहकर (भी) तुम प्रदीप को नहीं खोजते ?

147. पस्स चित्तकतं बिम्बं अरुकायं समुस्सितं ।
आतुरं बहुसङ्कप्पं यस्स नत्थि धुवं ठिति ।।२।।

इस विचित्र शरीर को देखो, जो व्रणों से युक्त है, जो फूला है, जो रोगी है, जो नाना प्रकार के संकल्पों से युक्त है, जिसकी स्थिति निश्चित नहीं है ।

148. परिजिण्णमिदं रूपं रोगनिड्ढं पभङ्गुरं ।
भिज्जति पूतिसन्देहो मरणन्तं हि जीवितं ।।३।।

यह शरीर जीर्ण–शीर्ण है, रोग का घर है, भंगुर है, सड़कर भग्न होनेवाला है, सभी जीवितों को मरना होता है ।

149. यानी'मानि अपत्थानि अलाबूनेव सारदे ।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ।।४।।

यह जो शरद्–काल की सी अपथ्य लौकी की तरह या कबूतरों की सफेदी की सी सफेद हड्डियाँ हैं, उन्हें देखकर (शरीर में) किसी की क्या रति होगी ?

150. अठ्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं ।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ।।५।।

हड्डियों का नगर बनाया गया है, मांस और रक्त से लेपा गया हैं, उसमें बुढ़ापा, मृत्यु, अभिमान और ढाह छिपे हैं।

151\. जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥६॥

सुचित्रित राजरथ पुराने पड़ जाते हैं, शरीर जरा को प्राप्त हो जाता है; किन्तु बुद्धों का धर्म जरा को नहीं प्राप्त होता। सन्त-जन सत्पुरुषों से ऐसा कहते हैं।

152\. अप्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो'व जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति पञ्ञा तस्स न वड्ढति ॥७॥

अज्ञानी पुरुष बैल की तरह बढ़ता जाता है। उसका मांस बढ़ता है, प्रज्ञा नहीं।

153\. अनेकजातिसंसारं सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥८॥

154\. गहकारक ! दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥९॥

गृहकारक को ढूंढ़ते हुए मैं अनेक जन्मों तक लगातार संसार में दौड़ता रहा। बार-बार जन्म लेना दुःख है। गृहकारक ! तू दिखाई दे गया। अब फिर घर नहीं बन सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गई। घर का शिखर बिखर गया। चित्त संस्कार-रहित हो गया। तृष्णाओं का क्षय हो गया।

155. अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं ।
जिण्णकोंचाव झायन्ति खीणमच्छेव पल्लले ॥१०॥

जिन्होंने ब्रह्मचर्य्य का पालन नहीं किया, जिन्होंने जवानी में धन नहीं कमाया, वह बिना मछली के तालाब में बूढे क्रौंच पक्षी की तरह ध्यान लगाते हैं ।

156. अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बणे धनं ।
सेन्ति चापातिखीणाव पुराणानि अनुत्थनं ॥११॥

जिन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया, जिन्होंने जवानी में धन नहीं कमाया, वह टूटे धनुष की तरह पुरानी बातों पर पछताते हुए पड़े रहते हैं ।

● ●

१२ – अत्तवग्गो

157. अत्तानं चे पियं जञ्ञा रक्खेय्य तं सुरक्खितं ।
तिण्णमञ्ञतरं यामं पटिजग्गेय्य पण्डितो ॥१॥

यदि अपने को प्यार करता हो, तो अपने को संभाल रक्खे । पण्डित (जन) रात के तीन प्रहरों में से एक प्रहर जागता रहे ।

158. अत्तानं एव पठमं पटिरूपे निसेवये ।
अथञ्ञमनुसासेय्य न किलिस्सेय्य पण्डितो ॥२॥

जो उचित है, उसे यदि पहले अपने करके पीछे दूसरे को उपदेश दे, तो पण्डित (जन) को क्लेश न हो ।

159. अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥३॥

यदि पहले स्वयं वैसा करे, जैसा औरों को उपदेश देता है, तो अपने को दमन कर सकनेवाला दूसरों का भी दमन कर सकता है । वस्तुतः अपने को दमन करना ही कठिन है ।

160. अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥४॥

आदमी अपना स्वामी आप है, दूसरा कौन स्वामी हो सकता है ? अपने को दमन करने वाला दुर्लभ स्वामीत्व को पाता है ।

161. अत्तनाव कतं पापं अत्तजं अत्तसम्भवं ।
अभिमत्थति दुम्मेधं वजिरं वस्ममयं मणिं ॥५॥

अपने से पैदा हुआ, अपने से उत्पन्न, अपने किया गया पाप दुर्बुद्धि आदमी को वैसे ही पीड़ित करता है, जैसे पाषाणमय-मणि को वज्र।

162. यस्सच्चन्तदुस्सील्यं मालुवा सालमिवोततं।
करोति सो तथत्तानं यथानं इच्छति दिसो ॥६॥

शाल वृक्ष पर फैली मालुवा लता की भांति जिसका दुराचार फैला है, वह अपने लिये वैसा ही करता है, जैसा उसके शत्रु चाहते है।

163. सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च।
यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥७॥

बुरे और अपने लिए अहितकर-कार्य्यों का करना आसान है; लेकिन शुभ और हितकर कार्य्यों का करना बहुत कठिन है।

164. यो सासनं अरहतं अरियानं धम्मजीविनं।
पटिक्कोसति दुम्मेघो दिट्ठि निस्साय पापिकं।
फलानि कट्ठकस्सेव अत्तहञ्ञाय फुल्लति ॥८॥

भ्रान्त-सिद्धांत का अनुयायी होने के कारण जो दुर्बुद्धि धर्मजीवी आर्य अर्हतों के शासन की निन्दा करता है, वह बाँस के फल की भाँति आत्म-हत्या के ही लिए फलता है।

165. अत्तना'व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति।
अत्तना अकतं पाप अत्तना'व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्तं नञ्ञो अञ्ञं विसोधये ॥९॥

अपना किया पाप अपने को मलिन करता है, अपना न किया पाप अपने को शुद्ध करता है। प्रत्येक आदमी की शुद्धि-अशुद्धि अलग-अलग है। एक आदमी दूसरे को शुद्ध नहीं कर सक्ता।

166. अत्तदत्थं परत्थेन बहुनापि न हापये।
अत्तदत्थमभिञ्ञाय सदत्थपसुतो सिया ॥१०॥

परार्थ के लिये आत्मार्थ को बहुत ज्यादह भी न छोड़े। आत्मार्थ को जानकर सदर्थ में लगे।

● ●

१३ – लोकवग्गो

167. हीनं धम्मं न सेवेय्य, पमादेन न संवसे ।
मिच्छादिट्ठि न सेवेय्य न सिया लोक–वड्ढनो ॥१॥

पाप–कर्म न करे । प्रमाद से न रहे । झूठी धारणा न रखे और आवागमन को बढानेवाला न बने ।

168. उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥२॥

उठे, आलसी न बने और सुचरित–धर्म का आचरण करे। धर्मचारी इस लोक और परलोक में सुख से रहता है ।

169. धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे ।
धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परम्हि च ॥३॥

सुचरित–धर्म का आचरण करे, दुश्चरित कर्म न करे । धर्मचारी इस लोक और परलोक में सुख से रहता है ।

170. यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं ।
एवं लोकं अवेक्खन्तं मच्चुराजा न पस्सति ॥४॥

आदमी जैसे बुलबुले को देखता है, जैसे (मरु) मरीचिका को देखता है, वैसे ही जो (पुरुष), लोक को देखता है, उसकी ओर यमराज (आँख उठाकर) नहीं देखता ।

171. एथ पस्सथिमं लोकं चित्तं राजरथूपमं ।
यत्थबाला विसीदन्ति, नत्थि सङ्गो विजानतं ॥५॥

आओ, विचित्र राजरथ के समान इस लोक को देखो, जिसमें मूढ़ जन आसक्त होते है; ज्ञानी आसक्त नहीं होते ।

172. यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति ।
सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।६।।

जो पहले भूल करके (भी) फिर भूल नहीं करता वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोक को प्रकाशित करता है ।

173. यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयति ।
सोमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ।।७।।

जो अपने किये पाप-कर्म को कुशल कर्म से ढक देता हैं, वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है ।

174. अन्धभूतो अयं लोको तनुकेत्थ विपस्सति ।
सकुन्तो जालमुत्तोव अप्पो सग्गाय गच्छति ।।८।।

यह संसार अन्धा है । यहाँ थोडे ही देखते हैं । जाल से मुक्त पक्षियों की तरह थोड़े ही लोग स्वर्ग को जाते है ।

175. हंसादिच्चपथे यन्ति आकासे यन्ति इद्धिया ।
नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेत्वा मारं सवाहिणिं ।।९।।

हंस आकाश में उड़ते हैं, ऋद्धि-बल-प्राप्त आकाश मार्ग से जाते हैं और सेना-सहित मार को जीत लेने पर धीर-जान लोक से (निर्वाण को) जाये जाते हैं ।

176. एकं धम्मं अतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो ।
वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ।।१०।।

जो एक (इस) नियम को लाँघ गया हैं, जो झूठ बोलनेवाला है और जिसको परलोक का ख्याल नहीं, वह आदमी किसी भी पाप-कर्म को कर सकता है ।

177 न (वे) कदरिया देवलोकं वजन्ति
बाला हवे नप्पसंसन्ति दानं ।
धीरो च दानं अनुमोदमानो
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ।।११।।

कञ्जूस लोग देवलोक नहीं जाते, मूर्ख लोग दान की प्रशंसा नहीं करते; धैर्य्यवान् आदमी दान अनुमोदन कर उसी (कर्म) से परलोक में सुखी होता है ।

178. पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा ।
सब्बलोकाधिपच्चेन सोतापत्तिफलं वरं ।।१२।।

अकेले पृथ्वी का राजा होने से, स्वर्ग जाने से, सभी लोकों का अधिपति होने से भी अधिक श्रेष्ठ है स्त्रोतापत्ति-फल ।

● ●

१४ – बुद्धवग्गो

179. यस्स जितं नावजीयति
जितमस्स नो याति कोचि लोके।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥१॥

जिसकी जीत हार में परिणत नहीं हो सकती, जिसकी जीत को लोक में कोई नहीं पहुँचता, उस अपद अनन्त–ज्ञानी बुद्ध को तुम किस उपाय से अस्थिर कर सकोगे ?

180. यस्स जालिनी विसत्तिका
तण्हा नत्थि कुहिञ्चि नेतवे।
तं बुद्धमनन्तगोचरं अपदं केन पदेन नेस्सथ ? ॥२॥

जिसे जाल फैलानेवाली विषयरूपी तृष्णा लोक में कहीं भी नहीं ले जा सकती, उस अपद अनन्तज्ञानी बुद्ध को तुम किस उपाय से अस्थिर कर सकोगे।

181. ये झाणपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता।
देवापि तेसं पिहयन्ति सम्बुद्धानं सतीमतं ॥३॥

जो धीर हैं, ध्यान में रत हैं, त्याग और उपशमन में लगे हैं, उन स्मृतिमान् बुद्धों की देवता भी प्रशंसा करते हैं।

182. किच्छो मनुस्सपटिलाभो किच्छं मच्चानं जीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥४॥

मनुष्य योनि मुश्किल से मिलती है, मनुष्य–जीवन मुश्किल से बना रहता है, सद्धर्म का सुनना मुश्किल से मिलता है और बुद्धों का जन्म मुश्किल से होता है।

183. सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा ।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं ।।१५।।

सब पापों का न करना, शुभ कर्मों का करना, चित्त को परिशुद्ध रखना, यही है बुद्धों की शिक्षा ।

184. खन्ती परमं तपो तितिक्खा,
निब्बाणं परमं वदन्ति बुद्धा ।
नहि पब्बजितो परूपघाती,
समणो होति परं विहेठयन्ती ।।६।।

शान्ति और सहन-शीलता परं तप है, बुद्ध निर्वाण को परं श्रेष्ठ बतलाते हैं । दूसरे का घात करनेवाला प्रव्रजित नहीं होता । दूसरे को पीड़ा न देने वाला ही श्रमण होता है ।

185. अनूपवादो अनूपघातो पातिमोक्खे च संवरो ।
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पन्तञ्च सयनासनं ।।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ।।७।।

किसी की निन्दा न करना. किसी का घात न करना, भिक्षुनियमों का पालन करना, उचित मात्रा में भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना चित्त को योग-अभ्यास में लगाना- यही है बुद्धों की शिक्षा ।

186. न कहापणवस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति ।
अप्पस्सादा दुक्खा कामा इति विञ्ञाय पण्डितो ।।८।।

187. अपि दिब्बेसु कामेसु रतिं सो नाधिगच्छति ।
तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ।।९।।

कार्षापणों की वर्षा होने से भी मनुष्य की कामनाओं की तृप्ति नहीं होती । सभी काम-भोग अल्प-स्वादवाले हैं, दुःखद हैं; यह जानकर पण्डित (जन) दिव्य काम-भोगों में भी रति नहीं करता और सम्यक् सम्बुद्ध का शिष्य तृष्णा के नाश करने में लगा रहता है ।

188. बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च ।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता ॥१०॥

189. नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं ।
नेतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥११॥

भय के मारे मनुष्य पर्वत, बन, उद्यान, वृक्ष, चैत्य आदि बहुत चीजों की शरण ग्रहण करते हैं । लेकिन यह शरण ग्रहण करना कल्याण-कर नहीं, उत्तम नहीं, इन शरणों को ग्रहण करके कोई सारे के सारे दुःख से मुक्त नहीं हो सकता ।

190. यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सङ्घञ्च सरणं गतो ।
चत्तारि अरियसच्चानि सम्मप्पञ्ञाय पस्सति ॥१२॥

191. दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ॥१३॥

192. एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।
एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥१४॥

जो बुद्ध, धर्म, संघ की शरण ग्रहण करता है, जो चारों आर्य्य सत्यों को भली प्रकार प्रज्ञा से देखता है– (१) दुःख, (२) दुख की उत्पत्ति, (३) दुःख का विनाश, (४) दुःख का उपशमन करनेवाला आर्य–अष्टांगिक मार्ग—उसका यह शरण ग्रहण करना कल्याण–कर है यही शरण उत्तम है । इस शरण को ग्रहण करके (मनुष्य) सब दुःखों से मुक्त होता है ।

193. दुल्लभो पुरिसाजञ्ञो न सो सब्बत्थ जायति ।
यत्थ सो जायति धीरो तं कुलं सुखमेधति ॥१५॥

श्रेष्ठ पुरुष का जन्म दुर्लभ है, वह सब जगह पैदा नहीं होता । जिस कुल में वह धीर पैदा होता है, उस कुल में सुख की वृद्धि होती है ।

194. सुखो बुद्धानं उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना ।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गानं तपो सुखो ॥१६॥

बुद्धों का पैदा सुख-कर है, सद्धर्म का उपदेश सुख–कर है, संघ में एकता का होना सुख–कर है, और सुख–कर है मिलकर तप करना ।

195. पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि व सावके
पपञ्चसमतिक्कन्ते तिण्णसोकपरिद्दवे ॥१७॥

196. ते तादिसे पूजयतो निब्बुते अकुतोभये ।
न सक्का पुञ्ञं संखातुं इमेत्तमिति केनचि ॥१८॥

पूजनीय बुद्धों अथवा उनके शिष्यों–जो (संसार के) प्रपंच से छूट गये हैं, जो शोक–भय को पार कर गये हैं की पूजा के, या उन जसे मुक्त और निर्भय (पुरुषों) की पूजा के पुण्य के परिमाण को "इतना है" करके कोई नहीं बता सकता ।

● ●

१५ – सुखवग्गो

197. सुसुखं वत ! जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो ।
वेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥१॥

वैर करनेवाले मनुष्यों में अवैरी बने रहकर हम सुखपूर्वक जीते हैं । वैरी मनुष्यों में हम अवैरी बनकर विचरते हैं ।

198. सुसुखं वत ! जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥२॥

रोगी मनुष्यों में रोग–रहित होकर हम सुखपूर्वक जीते हैं । रोगी मनुष्यों में हम स्वस्थ बनकर विचरते हैं ।

199. सुसुखं वत ! जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका !
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥३॥

आसक्त मनुष्यों में अनासक्त बने रहकर हम सुखपूर्वक जीते हैं । आसक्त मनुष्यों में हम अनासक्त बनकर विचरते हैं ।

200. सुसुखं वत ! जीवाम येसं नो नत्थि किञ्चनं ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभस्सरा यथा ॥४॥

जिन हम लोगों के पास कुछ नही, अहो ! हम सुखपूर्वक जीतें हैं । हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का ही भोजन करके रहेंगे ।

201. जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो ।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं ॥५॥

जय से वैर पैदा है, पराजित दुःखी रहता है । जय–पराजय दोनों को छोड़कर शान्त (मनुष्य) सुखपूर्वक सोता है ।

202. नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि ।
नत्थि खधासमा दुक्खा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥६॥

राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान मल नहीं। पाँच-स्कन्धों (के समुदाय) के समान दुःख नहीं। शान्ति से बढ़कर सुख नहीं।

203. जिघच्छा परमा रोगा, सङ्खारा परमा दुखा ।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बाणं परमं सुखं ॥७॥

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार परम दुःख हैं, इस यथार्थ (बात) जाननेवाले को निर्वाण परम सुख हैं।

204. आरोग्य परमा लाभा सन्तुट्ठीपरमं धनं ।
विस्सासपरमा ञाती निब्बाणं परमं सुखं ॥८॥

निरोग रहना परम लाभ है, सन्तुष्ट रहना परम धन, विश्वास सबसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख।

205. पविवेकरसं पीत्वा रसं उपसमस्स च ।
निद्दरो होति निप्पापो धम्मपीतिरसं पिबं ॥९॥

एकान्त (वास) तथा शान्ति के रस को पान कर आदमी निडर होता है और धर्म के प्रेम रस को पान कर होता है निष्पाप।

206. साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।
अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥१०॥

सत्पुरुषों का दर्शन करना अच्छा है, सत्पुरुषों की संगति सदा सुखकर है, और मूर्खों का दर्शन न होने से ही (आदमी) सदा सुखी रहता है।

207. बालसंगतचारी हि दीघमद्धानं सोचति ।
दुक्खो बालेहि संवासो अमित्तेनेव सब्बदा ॥
धीरो च सुखसंवासो ञातीनं ’व समागमो ॥११॥

मूर्खों की संगति करनेवाला दीर्घ काल तक शोक करता है, मूर्खों की संगति शत्रु की संगति की तरह सदा दुखदायी होती है; और धैर्यवानों की संगति बन्धुओं की संगति की तरह सुखदायी होती है।

208. तस्मा हि धीरं च पञ्ञञ्ञ बहु–स्सुतं च
धोरय्हसीलं वतवन्तमरियं।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं
भजेथ नक्खत्तपथं'व चन्दिमा ॥१२॥

इसलिए धीर, प्राज्ञ बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती आर्य तथा सुबुद्ध सत्पुरुष की संगति करे; जैसे चन्द्रमा नक्षत्र पथ का (सेवन करता) है।

● ●

१६ – पियवग्गो

209. अयोगे युञ्जमत्तानं योगस्मिञ्च अयोजयं ।
अत्थं हित्वा पियग्गाही पिहेत'त्तानुयोगिनं ॥१॥

अपने को उचित कार्य्य में न लगा, अनुचित में लगा, सदर्थ को छोड़कर प्रिय के पीछे भागनेवाले को आत्मानुयोगी की स्पृहा करनी होती है ।

210. मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं
पियानं अदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ॥२॥

प्रियों का साथ मत करो और अप्रियों का साथ कभी न करो । प्रियों का अदर्शन दुःखद होता है और अप्रियों का दर्शन ।

211. तस्मा पियं न कयिराथ पियपायो हि पापको ।
गन्था तेसं न विज्जन्ति येसं नत्थि पियाप्पियं ॥३॥

इसलिए (किसी को) प्रिय न बनावे, प्रियका नाश बुरा (लगता) है; उनके (दिल में) गाँठ नहीं होती जिनके प्रिय–अप्रिय नहीं होते ।

212. पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं ।
पियतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥४॥

प्रिय से शोक उत्पन्न होता हैं, प्रिय से भय। जो प्रिय से मुक्त है, उसे शोक नहीं भय कहाँ से होगा ?

213. पेमतो जायते सोको पेमतो जायते भयं ।
पेमतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥५॥

प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय । जो प्रेम से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

214. रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥६॥

राग से शोक उत्पन्न होता हैं, राग से भय। जो राग से मुक्त है उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

215. कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ॥७॥

काम (भोग) से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय। जो काम से मुक्त है उसे शोक नहीं, भय कहाँ से होगा ?

216. तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ? ॥८॥

तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय। जो तृष्णा से मुक्त है, उसे शोक नहीं, भय कहां से होगा ?

217. सीलदस्सनसंपन्नं धम्मट्ठे सच्चवादिनं ।
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥९॥

जो शीलवान है, जो विद्वान हैं, जो धर्म में स्थित हैं, जो सत्यवादी है, जो अपने काम को करनेवाला है, ऐसे (आदमी) को लोग प्यार करते है।

218. छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया ।
कामेसु च अप्पटिबद्धचित्तो उद्धंसोतो'ति वुच्चति ॥१०॥

जिसको निर्वाण की अभिलाषा है, जिसने उसे मन से स्पर्श किया है, जिसका चित्त काम-भोगों में संलग्न नहीं है, वह ऊर्ध्व-स्रोत कहलाता है।

219 चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं ।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥११॥

220. तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मा लोका परं गतं ।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति पियं ञातीव आगतं ।।१२।।

चिरकाल तक विदेश में रहकर सकुशल लौटने पर ज्ञाति, बन्धु और मित्र उसका अभिनन्दन करते हैं, इसी प्रकार पुण्य (–कर्मा) पुरुष के इस लोक से परलोक जाने पर, उसके पुण्य उसका स्वागत करते हैं, जैसें ज्ञाति–बन्धु अपने प्रिय व्यक्ति का ।

● ●

१७ – कोधवग्गो

221. कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं
सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेय्य ।
तं नामरूपस्मि असज्जमानं
अकिञ्चनं नानुपतन्ति दुक्खा ॥१॥

क्रोध को छोड़ दे, अभिमान को छोड़ दे, सब बन्धनों को पार कर जाय––ऐसे आदमी को जो नाम–रूप में आसक्त न हो, जो परिग्रह–रहित हो दुःख नहीं सताते ।

222. यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं'व धारये
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो ॥२॥

जो आये क्रोध को उसी तरह रोक ले, जैसे कोई मार्ग भ्रष्ट रथ को; उस आदमी को मैं (असली) सारथी कहता हूँ, दूसरे लोक तो केवल रस्सी पकड़ने वाले हैं ।

223. अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥३॥

क्रोध को अक्रोध से, बुराई को भलाई से, कंजूस–पन को दान से और झूठ को सत्य से जीते ।

224. सच्चं भणे कुज्झेय्य, दज्जा' प्पस्मिम्पि याचितो ।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके ॥४॥

सत्य बोले, क्रोध न करे, मांगने पर थोड़ा रहते भी दे । इन तीन बातों के करने से आदमी देवताओं के पास जाता है ।

225. अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता ।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ।।५।।

जो मुनि (जन) अहिंसक हैं, जो शरीर से सदा संयत रहते हैं; वे उस पतन–रहित स्थान को प्राप्त होते हैं, जहाँ जाने पर शोक नहीं होता।

226. सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं ।
निब्बान अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ।।६।।

जो सदा जागरूक रहते हैं, जो रात–दिन सीखने में लगे रहते हैं, जो निर्वाण प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील हैं, उनके आस्रव अस्त हो जाते हैं।

227. पोराणमेतं अतुल ! नेतं अज्जतनामिव ।
निन्दन्ति तुण्हीमासीनं निन्दन्ति बहुभाणिनं ।
मितभाणिनम्पि निन्दन्ति नत्थि लोके अनिन्दितो ।।७।।

हे अतुल ! यह पुरानी बात है, यह आज की नहीं। चुप बैठे रहनेवाले की भी निन्दा होती है, बहुत बोलनेवाले की भी निन्दा होती है, कम बोलनेवाले की भी निन्दा होती है, दुनिया में ऐसा कोई नहीं जिसकी निन्दा न होती हो।

228. न चाहु न च भविस्सति न चेतरहि विज्जति ।
एकन्तं निन्दितो पोसो एकन्तं वा पसंसितो ।।८।।

ऐसा आदमी जिसकी या तो बिलकुल प्रशंसा ही प्रशंसा होती हो या निन्दा ही निन्दा; न हुआ, न है, न होगा।

229. यञ्ञू विञ्ञू पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।
अच्छिद्दवुत्ति मेधाविं पञ्ञासीलसमाहितं ।।९।।

230. नेक्खं जम्बोनदस्सेव को तं निन्दितुमरहति ।
देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मुणाऽपि पसंसितो ।।१०।।

जिस आदमी की प्रशंसा विज्ञ लोग सोच विचार कर रोज–रोज करें, उस दोष–रहित मेधावी, प्रज्ञा शील से युक्त, जाम्बुनद की अशर्फी के समान आदमी की निन्दा कौन कर सकता है ? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, और ब्रह्मा द्वारा भी वह प्रशंसित होता है ।

231. कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया ।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ।।११।।

काय की चंचलता से बचा रहे । काय का संयम रक्खे । शारीरिक दुश्चरित्र को छोड़कर शरीर से सदाचरण करे ।

232. वचीपकोपं रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया ।
वचीदुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ।।१२।।

वाणी की चंचलता से बचे । वाणी का संयम रक्खे । वाणी का दुश्चरित्र छोड़कर वाणी का सदाचरण करे ।

233. मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया ।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे ।।१३।।

मन की चंचलता से बचे । मन का संयम रक्खे । मन का दुश्चरित्र छोड़कर मानसिक सदाचरण करे ।

234. कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता ।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ।।१४।।

जो काय से संयत हैं, जो वाणी से संयत हैं, जो मन से संयत हैं, वे ही अच्छी तरह से संयत कहे जा सकते हैं ।

● ●

१८ – मलवग्गो

235. पण्डुपलासो' व दानिसि, यमपुरिसापि च ते उपट्ठिता।
उय्योगमुखे च तिट्ठसि पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ।।१।।

इस वक्त तू पीले–पत्ते के समान है, तेरे पास यम–दूत आ खड़े हैं, तेरे प्रयाण की तैयारी है; और तेरे पास पाथेय भी नहीं है ।

236. सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमली अनङ्गणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि ।।२।।

इसलिए अपने आप को दीप बना, जल्दी उद्योग करके पण्डित बन, मलरहित, दोष–रहित होकर तू दिव्य आर्य–भूमि को प्राप्त करेगा ।

237. उपनीतवयो च दानिसि
सम्पयातोसि यमस्स सन्तिके ।
वासोपि च ते नत्थि अन्तरा
पाथेय्यम्पि च ते न विज्जति ।।३।।

तेरी आयु समाप्त हो गई, तू यम के पास पहुँच गया हैं, तेरे लिए रास्ते में निवास–स्थान भी नहीं है और तेरे पास पाथेय भी नहीं है ।

238. सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।
निद्धन्तमलो अनङ्गणो न पुन जातिजरं उपेहिसि ।।४।।

इसलिए अपने आप को दीप बना, जल्दी उद्योग करके पण्डित बन; मलरहित, दोष-रहित होकर तू जन्म और बुढ़ापे के बन्धन में नहीं पड़ेगा ।

239. अनुपुब्बेन मेधावी थोकथोकं खणे खणे ।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो ।।५।।

जिस प्रकार सुनार चाँदी के मल को दूर करता है, उसी प्रकार मेधावी (पुरुष) प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा करके अपने दोषों को दूर करे।

240. अयसा'व मलं समुट्ठितं
तदुट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं
सककम्मानि नयन्ति दुग्गतिं ॥६॥

लोहे से उत्पन्न मोर्चा लोहे से पैदा होकर लोहे को ही खा डालता है। उसी प्रकार अति चञ्चल (मनुष्य) के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को ले जाते हैं।

241. असज्झायमला मन्ता अनुट्ठानमला घरा।
मलं वण्णस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं ॥७॥

आवृत्ति न करना (वेद) मन्त्रों का मल (मोर्चा) है, मरम्मत न करना घरों का मल (मोर्चा) है, आलस्य (शरोर के) सौन्दर्य का मल (मोर्चा) है और असावधानी पहरेदार का (मोर्चा) है।

242. मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मलं।
मला वे पापका धम्मा अस्मिं लोके परम्हि च ॥८॥

दुश्चरित्र होना स्त्री का मल (मोर्चा) है, कंजूस होना दाता का मोर्चा है, और पाप-कर्म इस लोक तथा परलोक में मोर्चा हैं।

243. ततो मला मलतरं अविज्जा परमं मलं।
एतं मलं पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो ॥९॥

लेकिन इन सब मलों से बढ़कर मल है—अविद्या। भिक्षुओं! इस मल को छोड़कर निर्मल बनो।

244. सुजीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं ॥१०॥

(पाप के प्रति) निर्लज्ज, कौवे के समान छीनने में शूर, (परहित-) विनाशक, पतित, उच्छृङ्खल और मलिन बनकर जीवन व्यतीत करना आसान है ।

245. हिरीमता च दुज्जीवं निच्चं सुचिगवेसिना ।
अलीलेन'प्पगब्भेन सुद्धाजीवेन पस्सता ।।११।।

लेकिन (पाप के प्रति) लज्जाशील, नित्य ही पवित्रता का विचार करते हुये, आलस्य-रहित, उच्छृङ्खलता-रहित, शुद्ध-आजीविका के साथ विचारवान् बनकर जीवन व्यतीत करना कठिन है।

246. यो पाणमतिपातेति मुसावादञ्च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारञ्च गच्छति ।।१२।।

247. सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मि मूलं खनति अत्तनो ।।१३।।

जो हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है, जो चोरी करता है, जो पराई स्त्री के पास जाता है और जो मद्यपान करता है, वह आदमी यहीं इसी लोक में अपनी जड़ खोदता है ।

248. एवं भो पुरिस ! जानाहि पापधम्मा असञ्ञता ।
मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ।।१४।।

हे पुरुष, इसलिए ऐसा जान कि असंयत (जन) पापी (होते हैं) तुझे लोभ और अधर्म चिरकाल तक दुःख में न राँधे ।

249. ददन्ति वे यथासद्धं यथापसादनं जनो ।
तत्थ यो मंकु भवति परेसं पानभोजने ।
न सो दिवा वा रत्ति वा समाधिं अधिगच्छति ।।१५।।

लोग अपनी-अपनी श्रद्धा और प्रसन्नता के अनुसार दान देते हैं, जो दूसरों के खाने-पीने में असन्तोष प्रकट करता है, उसको न रात को शान्ति प्राप्ति होती है न दिन को ।

250. यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं ।

स वे दिवा वा रत्ति वा समाधि अधिगच्छति ॥१६॥

(लेकिन) जिसमें से यह (भाव) जड़ मूल से जाता रहा है वह रात को भी, दिन को भी, सदा शान्ति से रहता है ।

251. नत्थि रागसमो अग्गि नत्थि दोससमो गहो ।

नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥

राग के समान आग नहीं, द्वेष के समान ग्रह नहीं, मोह के समान जाल नहीं और तृष्णा के समान नदी नहीं ।

252. सुदस्सं वज्जमञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।

परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुसं ।

अत्तनो पन छादेति कलिं' व कितवा सठो ॥१८॥

दूसरों के दोष देखना आसान है, अपने दोष देखना कठिन । (आदमी) दूसरों के दोषों को तो भुस की भांति उड़ाता है, किन्तु अपने दोषों को ऐसे ढकता है जैसे बेईमान जुवारी पासे को ।

253. परवज्जनुपस्सिस्स निच्चं उज्झानसञ्ञिनो ।

आसवा तस्स वड्ढंति आरा सो आसवक्या ॥१९॥

दूसरों के ही दोष देखते फिरनेवाले के, सदा चिढ़ते रहनेवाले के आस्रव बढ़ते है । ऐसा आदमी आस्रवों के क्षय से दूर है ।

254. आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।

पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता ॥२०॥

आकाश में चिन्ह नहीं; (आर्य अष्टांगिक मार्ग से) बाहर श्रमण नहीं । लोग प्रपंच में लगे रहते हैं । तथागत प्रपंच हीन हैं ।

255. आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।

सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिञ्जितं ॥२१॥

आकाश में चिह्न नहीं, (आर्य अष्टांगिक–मार्ग से) बाहर श्रमण नहीं । संस्कार नित्य नहीं हैं और बुद्धों में अस्थिरता नहीं । ● ●

१९ – धम्मट्ठवग्गो

256. न तेन होति धमट्ठो येनत्थं साहसा नये ।
यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥१॥

257. असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।
धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो ति पवुच्चति ॥२॥

जो आदमी सहसा किसी बात का निश्चय कर दे, वह धर्म स्थित नहीं कहलाता । जो पण्डित-जन अर्थ, अनर्थ दोनों का अच्छी तरह विचार कर, धीरज के साथ, निष्पक्ष होकर न्याय करता है, वही मेधावी धर्म स्थित कहलाता है ।

258 न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो'ति पवुच्चति ॥३॥

बहुत बोलने से पण्डित नहीं होता । जो क्षेमवान अवैरी और निर्भय होता है, वही पण्डित कहलाता है ।

259. न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति ।
यो च अप्पम्पि सुत्वान धम्मं कायेन पस्सति ।
स वे धम्मधरो होति यो धम्मं नप्पमज्जति ॥४॥

बहुत बोलने भर से धर्मधर नहीं होता । थोड़ा भी धर्म सुनकर जो काय से उसके अनुसार आचरण करता है, और जो धर्म में प्रमाद नहीं करता, वही धर्मधर है ।

260. न तेन थेरो होति येन'स्स पलितं सिरो ।
परिपक्को वयो तस्स मोघजिण्णो ति वुच्चति ॥५॥

सिर के बाल पकने मात्र से कोई स्थविर नहीं होता, उसकी आयु पक गई रहती है, वह व्यर्थ में वृद्ध हुआ कहलाता है।

261. यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो थेरो ति पवुच्चति ॥६॥

जिसमें सत्य धर्म, अहिंसा, संयम और दम हैं, वही विगतमल, धीर स्थविर कहलाता है।

262. न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति इस्सुकी मच्छरी सठो ॥७॥

263. यस्स चेतं समुच्छिन्नं मूलघच्चं समूहतं।
स वन्तदोसो मेधावी साधुरूपो ति वुच्चति ॥८॥

(यदि) वह ईर्ष्यालु, मत्सरी और शठ हो, तो वक्ता होने से, वा सुन्दर रूप होने से आदमी साधु-रूप नहीं होता। जिस आदमी के ये दोष जड़-मूल से नष्ट हो गये हैं, जो दोष-रहित है, जो मेधावी है, वही साधु-रूप कहलाता है।

264. न मुण्डकेन समणो अब्बतो अलिकं भणं।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति ॥९॥

265. यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं समणो'ति पवुच्चति ॥१०॥

जो व्रत-हीन है, जो मिथ्याभाषी है, वह मुण्डित होने मात्र से श्रमण नहीं होता। इच्छा-लोभ से भरा (मनुष्य) क्या श्रमण बनेगा ? जो सब छोटे बड़े पापों का शमन करता है, उसे पापों का शमन-कर्ता होने के कारण से श्रमण कहते हैं।

266. न तेन भिक्खू (सो) होति यावता भिक्खते परे।
विस्सं धम्मं समादय भिक्खू होति न तावता ॥११॥

दुराचरण-युक्त मनुष्य दूसरों से भीख माँगनेवाला होने (मात्र) से भिक्षु नहीं होता।

267. यो'ध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।
सङ्खाय लोके चरति स वे भिक्खू 'ति वुच्चति ।।१२।।

जो पुण्य और पाप से परे हो गया है, जो ब्रह्मचारी है, जो ज्ञानपूर्वक लोक में विचरता है, वह भिक्षु है ।

268. न मोनेन मुनी होति मूल्हरूपो अविद्दसु
यो च तुलं' व पग्गह्य वरमादाय पंडितो ।।१३।।

269. पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनि ।
यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ।।१४।।

मूढ़ और अविद्वान केवल मौन रहने से मुनि नहीं होता । जो पण्डित तुला की भाँति तोलकर, उत्तम तत्व को ग्रहण कर पापों को त्यागता है, वही असली मुनि है । जो दोनों लोकों का मनन करता है वही मुनि होता है ।

270. न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति ।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो'ति पवुच्चति ।।१५।।

प्राणियों की हिंसा करने से कोई आदमी आर्य नहीं होता, जो किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता, वही आर्य होता है ।

271. न सीलब्बतमत्तेन बाहुसच्चेन वा पुन ।
अथवा समाधिलाभेन विविच्चसयनेन वा ।।१६।।

272. फुसामि नेक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं ।
भिक्खु ! विस्सासमापादि अप्पत्तो आसवक्खयं ।।१७।।

भिक्षुओं ! शीलवान होने से, व्रती होने से, बहुश्रुत होने से, समाधि लाभी होने से वा एकान्तवासी होने मात्र से यह विश्वास न कर लो कि मैं (सामान्य) जनों से असेवित नैष्कर्म्य–सुख का आनन्द ले रहा हूं । जब तक आश्रव-क्षय (चित्त–मलों का त्याग) न कर लो, तब तक चैन न लो ।

● ●

२० — मग्गवग्गो

273. मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा ।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा ॥१॥

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यों में चार आर्य सत्य श्रेष्ठ है, धर्म में वैराग्य श्रेष्ठ है, और चक्षुमान् (बुद्ध) श्रेष्ठ हैं ।

274. एसो'व मग्गो नत्थ'ञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया ।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं ॥२॥

ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही (एक) मार्ग है, दूसरा नहीं । भिक्षुओं ! तुम इसी रास्ते पर चलो । यह मार को मूछित करनेवाला है ।

275. एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्संतं करिस्सथ ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं ॥३॥

इस मार्ग पर चलने से तुम दुःख का अंत कर सकोगे । संसार-दुःख को स्वयं शल्य-समान जानकर मैंने यह मार्ग कहा है ।

276. तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना ॥४॥

तुम्हें ही कृत्य करना है, तथागत तो केवल मार्ग बतलानेवाले हैं । इस मार्ग पर आरूढ़ होकर ध्यान करनेवाले मार-बन्धन से मुक्त होंगे ।

277. सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दन्ति दुक्खे, एसमग्गो विसुद्धिया ॥५॥

सभी संस्कार (बनी चीजें) अनित्य हैं—जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है, तभी उसे संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है ।

278. सब्बे सङ्खारा दुक्खा 'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एसमग्गो विसुद्धिया ।।६।।

सभी संस्कार दुःख हैं–जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है तभी उसे संसार से विराग पैदा होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है।

279. सब्बे धम्मा अनत्ता 'ति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ।।७।।

सभी धर्म (पदार्थ) अनात्म हैं--जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है तभी उसे संसार से विराग होता है, यही विशुद्धि का मार्ग हैं।

280. उट्ठानकालम्हि अनुट्ठहानो
युवा बली आलसियंउपेतो ।
संसन्नसङ्कप्पमनो कुसीतो
पञ्ञाय मग्गं अलसो न विन्दति ।।८।।

जो उद्योग नहीं करता, युवा और बली होकर (भी) आलस्य से युक्त है, जिसका मन व्यर्थ के संकल्पों से भरा है--ऐसा आलसी आदमी प्रज्ञा के मार्ग को नहीं प्राप्त कर सकता।

281. वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो
कायेन च अकुसलं न कयिरा ।
एते तयो कम्मपथे विसोधये
आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ।।९।।

जो वाणी की रक्षा करता है, जो मन से संयमी है, जो शरीर से पाप–कर्म नहीं करता है; जो इन तीनों कर्मेन्द्रियों को शुद्ध रखता है वही बुद्ध के बतलाये धर्म का सेवन कर सकता है।

282. योगा वे जायती भूरि आयोगा भूरिसङ्खयो ।
एतं द्वेधापथं ञत्वा भवाय विभवाय च ।
तथ'त्तानं निवेसेय्य यथा भूरि पवड्ढति ।।१०।।

योग (अभ्यास) से ज्ञान बढ़ता है, योग न करने से ज्ञान का क्षय होता है। उत्पत्ति और विनाश के इस दो प्रकार के मार्ग को जानकर अपने आपको वैसे रक्खे, जिससे ज्ञान की वृद्धि हो।

283. वनं छिन्दथ मा रुक्खं वनतो जायती भयं।
छेत्वा वनञ्च वनथञ्च निब्बना होथ भिक्खवो ॥११॥

वन को काटो, वृक्ष को मत काटो। भय बन से पैदा होता है। हे भिक्षुओ ! वन और झाड़ी को काटकर निर्वाण प्राप्त करो।

284. यावं हि वनथो न छिज्जति अनुमत्तोपि नरस्स नारिसु।
पटिबद्धमनो नु ताव सो वच्छो खीरपको'व मातरि
॥१२॥

जब तक स्त्री में पुरुष की अणु मात्र भी कामना बनी रहती है, तब तक वह वैसे ही बँधा रहता है जैसे दूध पीने वाला बछड़ा अपनी मां से।

286. उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं सारदिकं'व पाणिना।
सन्तिमग्गमेव ब्रूह्य निब्बानं सुगतेन देसितं ॥१३॥

जिस तरह हाथ से शरद् (ऋतु) के कुमुद को तोड़ा जाता है, उसी तरह अपने (दिल से) स्नेह को उच्छिन्न कर दे; और सुगत द्वारा उपदिष्ठ शान्ति–मार्ग निर्वाण का अनुसरण करे।

286. इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हिसु।
इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥१४॥

यहां वर्षा–वास करुंगा, यहां हेमन्त में रहूंगा, यहां ग्रीष्म–ऋतु में, मूर्ख इस प्रकार सोचता है, विघ्न को नहीं देखता।

287. तं पुत्तपसुसम्मतं व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघो'व मच्चु आदाय गच्छति ॥१५॥

पुत्र और पशु में आसक्त (चित्त) मनुष्य को मृत्यु वैसे ही ले जाती है, जैसे सोये गाँव को (नदी की) बडी बाढ़।

288. न सन्ति पुत्ता ताणाय न पिता नापि बान्धवा ।
अन्तकेनाधिपन्नस्स नत्थि ञातिसु ताणता ।।१६।।

न पुत्र रक्षा कर सकते हैं, न पिता, न रिश्तेदार । जब मृत्यू पकड़ती है, तो रिश्तेदार नहीं बचा सकते ।

289. एतमत्थवसं ञत्वा पण्डितो सीलसंवुतो ।
निब्बाण–गमनं मग्गं खिप्पमेव विसोधये ।।१७।।

इस बात को जानकर शीलवान् पण्डित (जन) को चाहिये कि निर्वाण की ओर जानेवाले मार्ग को शीघ्र साफ़ करे ।

● ●

२१ – पकिण्णकवग्गो

290. मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुलं सुखं ।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुखं ॥१॥

थोड़े से सुख के परित्याग से यदि बहुत सुख की प्राप्ति दिखाई दे, तो बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि बहुत सुख का ख्याल कर के थोड़े सुख को छोड़ दे ।

291. परदुक्खूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥२॥

दूसरे को दुःख देकर जो अपने लिए सुख चाहता है, वैर के संसर्ग में आया हुआ वह वैर से मुक्त नहीं होता ।

292. यं हि किच्चं तदपविद्धं अकिच्चं मन कयिरति ।
उन्नलानं पमत्तानं तेसं वड्ढन्ति आसवा ॥३॥

जो कर्तव्य है उसे न करनेवाले, जो अकर्तव्य है उसे करनेवाले मलयुक्त प्रमादी जनों के आस्रव (चित्त के मैल) बढ़ते हैं ।

293. येसञ्च सुसमारद्धा निच्चं कायगता सति
अकिच्चं ते न सेवन्ति किच्चे सातच्चकारिनो ।
सतानं सम्पजानानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥४॥

जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित है, वह अकर्तव्य को नहीं करते, कर्तव्य को निरन्तर करते हैं । ऐसे स्मृतिमान और सचेत लोगों के आस्रव क्षय को प्राप्त होते हैं ।

294. मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये ।
रट्ठं सानुचरं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥५॥

तृष्णा (माता), अहंकार (पिता), आत्म-दृष्टि तथा उच्छेद-दृष्टि (दो क्षत्रिय राजाओं), राग (अनुचर), और पांच उपादान स्कंध (राष्ट्र) का हनन करके ब्राह्मण निष्पाप होता है ।

295. मातरं पितरं हन्त्वा राजानो द्वेच सोत्थिये ।
वेय्यग्घपञ्चमं हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो ॥६॥

तृष्णा (माता), अहंकार (पिता), आत्मदृष्टि तथा उच्छेद-दृष्टि (दो श्रोत्रिय राजाओं) और ज्ञान के पांच आवरणों (व्याघ्र) का हनन करके ब्राह्मण निष्पाप होता है ।

296. सुप्पबुद्धं पुबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं बुद्धगता सति ॥७॥

जिनकी दिन-रात बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं ।

297. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥८॥

जिनकी दिन-रात धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं ।

298. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं सङ्घगता सति ॥९॥

जिनकी दिन-रात संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं ।

299. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं कायगता सति ॥१०॥

जिनकी दिन-रात काय-स्मृति बनी रहती है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं ।

300. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च अहिंसाय रतो मनो ॥११॥

जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं।

301. सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥१२॥

जिनका मन दिन-रात योग-अभ्यास (भावना) में रत रहता है, गौतम (बुद्ध) के वह शिष्य खूब जागरुक रहते हैं ।

302. दुप्पब्बज्जं दुरभिरमं दुरावास घरा दुखा ।
दुक्खो समानसंवासो दुक्खानुपतितद्धगू ।
तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥१३॥

प्रव्रज्या में रत होना दुष्कर है, गृहस्थ में रहना दुःखकर है, असमान लोगों के साथ रहना दुःखकर है, आवागमन में पड़ना भी दुःखकर हैं । इसलिए न मार्ग में पड़े, न दुःख में गिरे ।

303. सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
यं यं पदेसं भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥१४॥

जो श्रद्धावान् है, जो सदाचारी है, जो यशस्वी है, जो सम्पत्तिशाली है, वह जहाँ जहाँ जाता है वहीं वहीं सत्कार पाता है ।

304. दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तोव पब्बता ।
असन्तेत्थ न दिस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ॥१५॥

सत्पुरुष हिमालय पर्वत की तरह दूर से प्रकाशित होते हैं, असत्पुरुष रात में फेंके बाण की तरह दिखाई नहीं देते ।

305. एकासनं एकसेय्यं एकोचरमतन्दितो ।
एको दमयमत्तानं वनन्ते रमितो सिया ॥१६॥

एकासन, एक शैय्यावाला, आलस्य-रहित (हो) अकेला विचरनेवाला अपने आपको अकेला दमन करनेवाला वन में आनंद से रहता है ।

२२ – निरयवग्गो

306. अभूतवादी निरयं उपेति यो चापि
कत्वा 'न करोमी' ति चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥१॥

असत्यवादी नरक में जाता है, जो करके 'नहीं किया' कहता है वह भी नरक में जाता है। दोनों ही प्रकार के नीच कर्म करनेवाले मरकर बराबर हो जाते हैं।

307. कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्ञता।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जरे ॥२॥

कंठ में कषाय-वस्त्र डाले कितने ही असंयमी पापी हैं। वह पापी अपने पाप-कर्मों के कारण नरक में उत्पन्न होते हैं।

308. सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥३॥

दुराचारी असंयमी हो देश का अन्न (राष्ट्र-पिण्ड) खाने से अग्नि शिखा के समान तप्त लोहे का गोला निगलना अच्छा है।

309. चत्तारी ठानानि नरो पमत्तो
आपज्जति परदारूपसेवी।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं
निन्दं ततियं निरयं चतुत्थं ॥४॥

310. अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका
भीतस्स भीताय रती च थोकिका।

राजा च दण्डं गरुकं पणेति
तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥५॥

प्रमादी, परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ होती हैं--अपुण्य-लाभ, सुख से निद्रा का न आना, निन्दा और नरक। (अथवा) अपुण्य-लाभ, दुर्गति, भयभीत (पुरुष) की भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प रति, राजा का भारी सजा देना—इसलिए मनुष्य परस्त्रीगमन न करे।

311. कुसो यथा दुग्गहीतो हत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं निरयायूपकड्ढति ॥६॥

जिस प्रकार कुश यदि उसे ठीक से न ग्रहण करे, तो हाथ छेद देता है, उसी प्रकार संन्यास (श्रामण्य) यदि उसे ठीक से न पालन करे, तो नरक में ले जाता है।

312 यं किञ्चि सिथिलं कम्मं सङ्किलिट्ठं च यं वतं ।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं न तं होति महप्फलं ॥७॥

जो कार्य ढीला-ढाला है, जो व्रत मल-युक्त है, जो ब्रह्मचर्य्य अशुद्ध है, उसका महान् फल नहीं होता।

313. कयिरा चे कयिराथेनं दळ्हमेतं परक्कमे ।
सिथिलो हि परिब्बाजो भिय्यो आकिरते रजं ॥८॥

यदि किसी काम को करना है, तो करे, उसमें दृढ़ पराक्रम के साथ जुट जावे। ढीला-ढाला सन्यासी अधिक धूल उड़ाता है।

314. अकतं दुक्कतं सेय्यो पच्छा तपति दुक्कतं ।
कतञ्च सुकतं सेय्यो यं कत्वा नानुतप्पति ॥९॥

पाप का न करना अच्छा, पाप करने वाले को अनुताप होता है; शुभकर्म का करना अच्छा, शुभ कर्म करनेवाले को अनुताप नहीं होता।

315. नगरं यथा पच्चन्तं गुत्तं सन्तरबाहिरं ।
एवं गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपच्चगा ।
खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ।।१०।।

जैसे सीमान्त देश का गढ़ (नगर) अन्दर–बाहर से सुरक्षित होता है उसी तरह से अपनी संभाल करे––एक क्षण भी न जाने दे । समय (हाथ से चले) जाने पर नरक में पड़कर शोक करना होता है ।

316. अलज्जिताये लज्जन्ति लज्जिताये न लज्जरे ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ।।११।।

अलज्जा (के काम) में जो लज्जा करते हैं, लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते, ऐसे झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

317. अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो ।
मिच्छादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं ।।१२।।

अभय (के स्थान) में जो भय करते हैं, भय में जो भयरहित रहते हैं––ऐसे झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

318. अवज्जे वज्जमतिनो वज्जे चावज्जदस्सिनो ।
मिच्छाठिट्ठसमादाना सत्ता गच्छति दुग्गतिं ।।१३।।

अदोष को जो दोष समझते हैं, दोष को जो अदोष समझते हैं–– ऐसे झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

319. वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो ।
सम्मादिट्ठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ।।१४।।

दोष को जो दोष करके जानते है, अदोष को अदोष, ऐसे ठीक धारणावाले प्राणी सुगति को प्राप्त होते हैं ।

● ●

२३ — नागवग्गो

320. अहं नागो'व सङ्गामे चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥१॥

जैसे युद्ध में हाथी धनुष से गिरे बाण को सहन करता है, वैसे ही मैं कटुवाक्यों को सहूंगा (क्योंकि) संसार में दुर्जन बहुत हैं।

321. दन्तं नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरूहति।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु योतिवाक्यं तितिक्खति ॥२॥

शिक्षित (हाथी) को युद्ध में ले जाते हैं, शिक्षित हाथी पर राजा चढ़ता है, मनुष्यों में शिक्षित (मनुष्य) श्रेष्ठ है जो कटुवाक्यों को सह सकता है।

322. वरा अस्सतरा दन्ता आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा अत्तदन्ता ततो वरं ॥३॥

खच्चर, आजानीय (अच्छे क्षेत्र के) सिन्धी घोड़े और महानाग हाथी शिक्षित हों तो श्रेष्ठ हैं—आदमी शिक्षित हो तो इन सबसे श्रेष्ठ है।

323. न हि एतेहि यानेहि गच्छेय्य अगतं दिसं।
यथाऽत्तना सुदन्तेन दन्तो दन्तेन गच्छति ॥४॥

इन (घोड़ें, गाडी आदि) वाहनों से कोई निर्वाण को नहीं जा सकता, जैसे अभ्यासी स्वयं जा सकता है। शिक्षित (मनुष्य) संयत इंद्रियों द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

324. धनपालको नाम कुञ्जरोकटकप्पभेदनो दुन्निवारयो।
बद्धो कवलं न भुञ्जति सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो ॥५॥

सेना को तितर-बितर कर देनेवाला, धनपालक नाम का दुर्घर्ष हाथी (आज) बन्धन में बंधा होने से कवल नहीं खाता; अपने हाथियों के जंगल की याद करता है।

325. मिद्धी यदा होति महग्घसो च निद्दायिता
सम्परिवत्तसायी।
महावराहो'व निवापपुट्ठो पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो ॥६॥

जो आलसी, बहुत खानेवाला, निद्रालु, करवट बदल-बदल कर सोनेवाला, दाना खाकर पले मोटें सूअर की भांति होता है, वह मन्द, गति बार-बार गर्भ में पड़ता है।

326. इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं
येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्ज'हं' निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो ॥७॥

पहले यह चित्त जहाँ इसकी इच्छा हुई, यथा-काम यथा-सुख विचरा; लेकिन आज मैं इसे अच्छी तरह काबू में करूंगा, जैसे महावत मस्त हाथी को।

327. अप्पमादरता होथ स'चित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथ-त्तानं पङ्के सत्तोव कुञ्जरो ॥८॥

जागरुक रहो, अपने मन को संभाल कर रक्खो। पङ्क में फंसे हाथी की तरह अपने आपको (राग आदि के) गढ़े में से निकालो।

328. सचे लभेथ निपकं सहाएं
सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि
चरेय्य तेन'त्तमनो सतीमा ॥९॥

यदि परिपक्व (बुद्धि) सच्चरित्र साथी मिले, तो सब विघ्नों को हटाकर सचेत प्रसन्न-चित्त हो उसके साथ विचरे।

329. नो चे लभेथ निपकं सहायं
सद्धिं चरं साधुविहारि धीरं।
राजा 'व रट्ठं विजितं पहाय
एको चरे मातङ्ग'रञ्ञेव नागो ॥१०॥

लेकिन यदि परिपक्व (बुद्धि) सच्चरित्र साथी न मिले तो जैसे पराजित राष्ट्र को छोड़ राजा (या) जंगल में हाथी अकेला विचरता हैं, उसी तरह अकेला विचरे।

330. एकस्स चरितं सेय्यो नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा
अप्पोस्सुक्को मातङ्ग 'रञ्ञो' व नागो ॥११॥

अकेले विचरना अच्छा हैं, मूर्ख की मित्रता अच्छी नहीं। अनासक्त मातङ्गराज हाथी की भांति अकेला विचरे, पाप न करे।

331. अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया
तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन।
पुञ्ञं सुखं जीवितसङ्खयम्हि
सब्बस्स सुक्खस्स सुखं पहाणं ॥१२॥

काम पड़ने पर मित्र सुखकर है, जिस तिस चीज से संतुष्ट रहना सुखकर है, जीवन के क्षय होने के समय पुण्य सुखकर है लेकिन सबसे बढ़कर सुखकर है सारे दु:खों का नाश।

332. सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा।
सुखा सामञ्ञता लोके अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा ॥१३॥

संसार में मातृ-सेवा सुखकर है और सुखकर है पितृ-सेवा। संसार में श्रमणत्व (सन्यास) सुखकर है और सुखकर है निष्पाप होना (ब्रह्मणत्व)।

333. सुखं याव जरा सीलं सुखा सद्धा पतिट्ठिता।
सुखो पञ्ञाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥१४॥

बुढापे तक सदाचारी रहना सुखकर है, स्थिर-श्रद्धा सुखकर है, प्रज्ञा की प्राप्ति सुखकर है और सुखकर है पापों का न करना।

● ●

२४ – तण्हावग्गो

334. मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा वड्ढति मालुवा विय ।
सो फलवती हुराहुरं फलमिच्छं व वनस्मि वानरो ॥१॥

प्रमादी मनुष्य की तृष्णा मालुवा (लता) की भाँति बढ़ती है। फल की इच्छा करता हुआ वह बन में बानर की तरह दिनों दिन भटकता है।

335. यं एसा सहति जम्मि तण्हा लोके विसत्तिका ।
सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवड्ढं व वीरणं ॥२॥

जिसे यह बराबर जनमते रहनेवाली विषरूपी तृष्णा पकड़ती है, वर्धनशील वीरण की भाँति उसके शोक बढ़ते हैं।

336. यो चेतं सहति जम्मि तण्हं लोके दुरच्चयं ।
सोका तम्हा पपतन्ति उदबिन्दूव पोक्खरा ॥३॥

लेकिन जो इस बराबर जनमते रहनेवाली दुर्जय तृष्णा को जीतता है, उसके शोक वैसे ही गिर जाते हैं, जैसे कमल (पत्र) से जल-बिन्दु।

337. तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता ।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थोव वीरणं ॥४॥

इसलिए जितने यहाँ आए हों, तुम्हें कहता हूँ—तुम्हारा मंगल हो। जिस प्रकार खस का चाहनेवाला वीरण घास को उखाड़ता है, उसी प्रकार तुम तृष्णा की जड़ खोद दो।

338. यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे
छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति ।

एवम्पि तण्हानुसये अनूहते
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ।।५।।

जिस प्रकार––जब तक जड़ पूरी तरह नहीं उखड़ जाती तब तक कटा हुआ भी वृक्ष उग आता है, उसी प्रकार जब तक तृष्णारूपी अनुशय पूरी तरह नष्ट नहीं हो जाते, तब तक बार बार दुःख पैदा होता रहता है ।

339. यस्स छत्तिसति सोता मनापस्सवना भुसा ।
बाहा वहन्ति दुद्दिट्ठि ससङ्कप्पा रागनिस्सिता ।।६।।

जिस आदमी के छत्तीस स्रोत, मन को अच्छी लगनेवाली चीजों की ही ओर जाते हों, उस झूठी धारणा वाले आदमी को उसके रागाश्रित संकल्प बहाकर ले जाते हैं ।

340. सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति ।
तञ्च दिस्वा लतं जातं मूलं पञ्ञाय छिन्दथ ।।७।।

स्रोत चारों ओर बहते हैं । लता अंकुरित रहती है । उस (तृष्णा-रूपी) लता को उत्पन्न हुआ देख प्रज्ञा से उसकी जड़ को काटो ।

341. सरितानि सिनेहितानि च
सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो ।
ते सोतसिता सुखेसिनो
ते वे जातिजरूपगा नरा ।।८।।

स्नेहरूपी नदियाँ प्राणियों के चित्त को अच्छी लगती हैं । इन (नदियों) के बन्धन में बँधे नर भोगों को खोजते हैं, और जाति तथा जरा के फेर में जा पड़ते हैं ।

342. तसिणाय पुरक्खता पजा
परिसप्पन्ति ससो' व बाधितो ।
संञ्ञोजनसङ्गसत्तका
दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुन चिराय ॥९॥

तृष्णा के पीछे लगे प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, संयोजनों में फँसे नर चिरकाल तक बार बार दुःख पाते हैं ।

343. तसिणाय पुरक्खता पजा
परिसप्पन्ति ससो'व बाधितो ।
तस्मा तसिणं विनोदये भिक्खु
आकङ्खी विरागमत्तनो ॥१०॥

तृष्णा के पीछे लगे प्राणी, बँधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं; इसलिए अनासक्त होने की इच्छा रखनेवाला भिक्षु तृष्णा को दूर करे ।

344. यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति ।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बन्धनमेव धावति ॥११॥

जो निर्वाणार्थी तृष्णा से मुक्त हो, अच्छी प्रकार मुक्त हो फिर तृष्णा की ही ओर दौड़ता है, उस आदमी को ऐसा जानो जैसे कोई बन्धन से मुक्त हो फिर बन्धन की ही ओर भागता है ।

345. न तं दळं हं बन्धनमाहु धीरा
यदायसं दारुजं बब्बजञ्य ।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु
पुत्तेसु दारेसु च या अपेखा ॥१२॥

यह जो लोहे, लकडी या रस्सी के बन्धन हैं, उन्हें धीर (जन) बन्धन नहीं कहते । असली बन्धन तो हैं---धन में अनुरक्ति, पुत्र तथा स्त्री में वनुरक्ति ।

346. एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥१३॥

इन्हीं बन्धनों को धीर (-जन) पतनोन्मुख, शिथिल और दुस्त्याज्य बन्धन कहते हैं। वे इन्हें भी छेद, अपेक्षारहित हो काम-सुख छोड़ प्रव्रजित होते हैं।

347. ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं
सयं कतं मक्कटकोव जालं
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा
अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय ॥१४॥

जो राग में रक्त है, वह मकडी के अपने बनाये जाले की तरह प्रवाह में फँस जाते हैं; धीर (जन) इसे भी छेद कर, अपेक्षा रहित हो, सब दुःखों को छोड़ प्रव्रजित होते हैं।

348. मुञ्च पुरं मुञ्च पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जातिजरं उपेहिसि ॥१५॥

पूर्व, वर्तमान तथा भविष्यके बन्धन को छोड़ कर संसार-सागर के पार हो जा। सब ओर से मन को मुक्त कर लेने वाला जाति-जरा को प्राप्त न होगा।

349. वितक्कपमथितस्स जन्तुनो
तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति
एसो खो दळ्हं करोति बन्धनं ॥१६॥

जिसकी मन में बहुत संकल्प-विकल्प उठते हैं, जिसके मन में तीव्र राग है, जो शुभ ही शुभ देखता है, उसकी तृष्णा बढ़ती है, वह अपने बन्धन को और भी दृढ़ करता है।

350. वितक्कूपसमे च यो रतो
असुभं भावयति सदा सतो ।
एस खो व्यन्तिकाहिनि
एस छेज्जति मारबन्धनं ॥१७॥

जो संकल्प–विकल्प को शान्त करने में लगा है, जो जागरुक रहकर सदा अशुभ को देखता है, वह मार के बन्धन को काटेगा, वही उसे नष्ट करेगा ।

351. निट्ठङ्गतो असन्तासी विततण्हो अनङ्गणो ।
उच्छिज्ज भवसल्लानि अन्तिमो'यं समुस्सयो ॥१८॥

जिसका (कार्य्य) समाप्त हो गया, जो त्रास–रहित है, जो तृष्णा-रहित है, जो मल–रहित है, वही संसार रुपी शल्य को काटेगा, यह उसका अन्तिम जन्म है ।

352. वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो ।
अक्खरानं सन्निपातं जञ्ञा पुब्बपरानि च ।
स वे अन्तिमसारीरो महापञ्ञो'ति वुच्चति ॥१९॥

जो तृष्णा–रहित है, जो परिग्रह–रहित है, जो भाषा और काव्य को जानता है, जो व्याकरण जानता हैं, वह निश्चय से अन्तिम शरीरवाला तथा महाप्राज्ञ है ।

353. सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
सब्बेसु धम्मेसू अनुपलित्तो ।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं ॥२०॥

मैंने सबको परास्त किया है, मैं सब कुछ जानता हूं, मैं सब धर्मो (अस्तिवों) से अलिप्त हूँ, मैं सर्वस्व–त्यागी हूं, मैने तृष्णा का क्षय किया है, मैं विमुक्त हूं –– स्वयं ज्ञान प्राप्त करके मैं किसे (अपना) गुरु बताऊं ?

354. सब्बदानं धम्मदानं जिनाति सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति तण्हक्खयो सब्बदुक्खं
जिनाति ॥२१॥

धर्म का दान सब दानों से बढ़कर है, धर्म–रस सब रसों से बढ़कर है धर्म–रति सब रतियों से बढ़कर है, तृणा का क्षय सब दुःख–क्षयों से बढ़कर है।

355. हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अञ्ञे'व अत्तनं ॥२२॥

भोग दुर्बुद्धि (–पुरुष) को नष्ट कर ड़ालते हैं यदि वह पार जाने की कोशिश नहीं करता। भोग की तृष्णा में पड़कर दुर्बुद्धि पराये की भांति अपने को मार ड़ालता है।

356. तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति पहप्फलं ॥२३॥

खेतों का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है राग। इसलिए वीतराग मनुष्यों को दिया गया दान महान फल देता है।

357. तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२४॥

खेतों का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है द्वेष। इसलिये द्वेषरहित मनुष्यों को दिया गया दान महान फल देता हैं।

358. तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२५॥

खेतों का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है मोह। इसलिए मूढ़ता-रहित मनुष्यों को दिया गया दान महान फल देता है।

359. तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं ॥२६॥

खेतों का दोष है तृण, मनुष्यों का दोष है इच्छा करना, इसलिए इच्छा–रहित मनुष्यों को दिया गया दान महान फल देता है। ● ●

२५ – भिक्खुवग्गो

360. चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो ॥१॥

आँख का संयम (करना) अच्छा है, कान का संयम अच्छा है; नाक का संयम अच्छा है, जिह्वा का संयम अच्छा है ।

361. कायेन, संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा, संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो ।
सब्बत्थ सवुतो भिक्खु सब्बदुखा पमुच्चति ॥२॥

शरीर का संयत रहना अच्छा है, वाणी का संयत रहना अच्छा है, मन का संयत रहना अच्छा है, सब इन्द्रियों को संयत रखनेवाला भिक्षु सब दुःखों से मुक्त होता है ।

362. हत्थसञ्ञातो पादसञ्ञातो
वाचाय सञ्ञातो सञ्ञातुत्तमो
अज्झत्तरतो समाहितो
एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं ॥३॥

जो हाथ, पाँव और वाणी से संयत है, जो उत्तम संयमी है, जो अपने में रत है, जो समाधियुक्त है, जो अकेला रहता है, जो सन्तुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं ।

363. यो मुखसञ्ञतो भिक्खु मन्तभाणी अनुद्धतो ।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥४॥

जो वाणी का संयमी है, जो मनन करके बोलता है, जो उद्धत नहीं है, जो अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण मधुर होता है।

364. धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं ।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति ।।५।।

धर्म में रमण करनेवाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करनेवाला, धर्म का अनुसरण करनेवाला भिक्षु सच्चे धर्म से च्युत नहीं होता।

365. सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञेसं पिहयं चरे ।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु समाधिं नाधिगच्छति ।।६।।

अपने लाभ की अवहेलना न करे, और न दूसरे के लाभ की स्पृहा। दूसरे के लाभ की स्पृहा करनेवाला भिक्षु चित्त की एकाग्रता को प्राप्त नहीं करता।

366. अप्पलाभोपि चे भिक्खु सलाभं नातिमञ्ञति ।
तं वे देवा पसंसन्ति सुद्धाजीविं अतन्दितं ।।७।।

चाहे लाभ थोड़ा ही हो, यदि भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता, तो उस शुद्ध–आजीविका वाले आलस्य रहित भिक्षु की देवता प्रशंसा करते हैं।

367. सब्बसो नामरूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं ।
असता च न सोचति स वे भिक्खू'ति वुच्चति ।।८।।

सारे जगत् (नाम–रूप) में जिसका कुछ भी "मेरा" नहीं है, जो (किसी वस्तु के) न रहने पर शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहलाता है।

368. मत्ताविहारी यो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ।।९।।

मैत्री (भावना) से विहार करता हुआ, जो भिक्षु बुद्ध के उपदेश में श्रद्धावान है, वह सभी संस्कारों के शमन, सुखस्वरूप शान्त–पद को प्राप्त करता है।

369. सिञ्च भिक्खु ! इमं नावं सित्ता ते लहुमेस्सति ।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निब्बाणमेहिसि ॥१०॥

भिक्षु, इस नावको उलीच । उलोचने से यह नाव तुम्हारे (लिए) हलकी हो जाएगी । रागऔ रऔर द्वेष को छेद कर तुम निर्वाण प्राप्त करोगे ।

370. पंच छिन्दे पञ्च जहे पञ्चुत्तरि भावये ।
पञ्च सङ्गातिगो भिक्खु ओघतिण्णो'ति वुच्चति ॥११॥

जो पाँच को छेदे, पाँच को छोडे, पाँच की भावना करे और पाँच के संसर्ग को लाँघ जाए, वह भिक्षु 'बाढ़ से उत्तीर्ण' कहा जाता है ।

371. झाय भिक्खु ! मा च पमादो
मा ते कामगुणे भमस्सु चित्तं ।
मा लोहगुलं गिली पमत्तो
मा कन्दि दुक्खमिदन्ति डय्हमानो ॥१२॥

भिक्षु, ध्यान कर, प्रमाद मत कर । (देख,) तेरा चित्त भोगों के चक्कर में न फँसे । प्रमत्त होकर लोहे के गोले को न निगल । "यह दुःख है" जलते हुए चिल्लाकर तुझे रोना न पडे ।

372. नत्थि झानं अपञ्ञस्स पञ्ञानत्थि अझायतो ।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च स वे निब्बाणसन्तिके ॥१३॥

जिसको प्रज्ञा नहीं, उसका चित्त एकाग्र नहीं होता, जिसका चित्त एकाग्र नहीं, वह प्रज्ञावान् नहीं हो सकता । जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं, वही निर्वाण के पास है ।

373. सुञ्ञागारं पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिक्खुनो ।
अमानुसो रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥१४॥

एकान्त गृह में रहनेवाले, शान्त-चित्त, सम्यक् धर्म को जाननेवाले भिक्षु को लोकोत्तर आनन्द मिलता है ।

374. यतो यतो सम्मसति खन्धानं उदयब्बयं ।
लभती पीतिपामोज्जं अमतं तं विजानतं ।।१५।।

मनुष्य जैसे-जैसे स्कंधों की उत्पत्ति और विनाश को देखता है, वैसे वैसे वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत को प्राप्त करता है ।

375. तत्रायमादि भवति इधपञ्ञस्स भिक्खुनो ।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि पातिमोक्खे च संवरो ।
मित्ते भजस्सु कल्याणे सुद्धाजीवे अतन्दिते ।।१६।।

बुद्धिमान भिक्षु को पहले यह करना होता है-इन्द्रिय-संयम, सन्तोष और भिक्षु-नियमों का पालन । (उसे चाहिये कि) वह शुद्ध आजीविकावाले, आलस्य-रहित कल्याण-मित्रों की संगति करे ।

376. पटिसन्थारवुत्तस आचारकुसलो सिया ।
ततो पामोज्जबहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्ससि ।।१७।।

सेवा-सत्कार करनेवाला होवे । आचारवान् बने । उससे आनन्दित होकर दुःख का अन्त करनेवाला बनेगा ।

377. वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ।।१८।।

जैसे जूही (अपने) कुम्हलाये-फूलों को गिरा देती है, उसी प्रकार भिक्षुओं, तुम राग और द्वेष को छोड़ दो ।

378. सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो ।
वन्तलोकामिसो भिक्खु उपसन्तोति वुच्चति ।।१९।।

जिसका शरीर शान्त है, जिसकी वाणी शान्त है, जिसका (मन) शान्त है, जो समाधि-युक्त है, जिसने लौकिक भोगों को छोड़ दिया है, वह भिक्षु उपशान्त कहलाता है ।

379. अत्तना चोदयत्तानं पटिमासे अत्तमत्तना ।
सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खु विहाहिसि ॥२०॥

जो स्वयं अपने आपको प्रेरित करेगा, जो स्वयं अपनी परीक्षा करेगा, वह आत्म-संयमी, स्मृतिमान् भिक्षु सुखपूर्वक रहेगा ।

380. अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।
तस्मा साञ्ञामयत्तानं अस्सं भद्रंव, वाणिजो ॥२१॥

(आदमी) अपना स्वामी आप है, अपनी गति आप है, इसलिए अपने आपको उसी तरह संयत रक्खे जैसे व्यापारी अच्छे घोड़े को ।

381. पामोज्जबहुलो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं सङ्खारूपसमं सुखं ॥२२॥

जो भिक्षु खूब प्रसन्न चित्त है, जो बुद्ध के उपदेश में श्रद्धावान् है, वह सभी संस्कारों के शमन, सुखस्वरूप शान्त-पद को प्राप्त करता है ।

382. यो हवे दहरो भिक्खु युञ्जते बुद्धसासने ।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा ॥२३॥

जो भिक्षु तरुणाई में बुद्ध-शासन में संलग्न होता है वह मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भांति लोक को प्रकाशित करता है ।

● ●

२६ – ब्राह्मणवग्गो

383. छिन्द सोतं परक्कम कामे पनुद ब्राह्मण ।
संखारानं खयं ञत्वा अकतञ्ञूसि ब्राह्मण ॥१॥

हे ब्राह्मण, (तृष्णा) स्रोत को छिन्न कर दे, पराक्रम कर, कामनाओं को भगा । हे ब्राह्मण ! संस्कारों के क्षय को जानकर तू अकृत (निर्वाण) का जानकार हो जा ।

384. यदा द्वयेसु धम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो ।
अथस्स सब्बे संयोगा अत्थं गच्छन्ति जानतो ॥२॥

जब ब्राह्मण चित्त-संयम और भावना, इन दो बातों में पारंगत हो जाता है, तब उस ज्ञानी के सभी बन्धन कट जाते हैं ।

385. यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति ।
वीतदरं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३॥

जिसका पार, अपार और पारापार नहीं है, जो निर्भय और अनासक्त हैं, उसे ब्राह्मण कहता हूँ ।

386. झायिं विरजमासीनं कतकिच्चं अनासवं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४॥

जो ध्यानी हैं, जो निर्मल है, जो एकान्त-सेवी है, कृतकृत्य है, जो आस्रव-रहित है, जिसने उत्तम अर्थ को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

387. दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा ।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो ।
अथ सब्बमहोरत्तं बुद्धो तपति तेजसा ॥५॥

दिन में सूर्य चमकता है, रात को चन्द्रमा चमकता है, कवचबद्ध (होने पर) क्षत्रिय चमकता है, ध्यानी (होने पर) ब्राह्मण चमकता है, लेकिन बुद्ध अपने तेज से सदैव दिन-रात चमकते हैं।

388. बाहितपापोति ब्राह्मणो समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं तस्मा पब्बजितोति वुच्चति ॥६॥

जिसने पापोंको बहा दिया है, वह ब्राह्मण है; जिसकी चर्य्या ठीक (सम) है, वह, श्रमण है; जिसने अपने (चित्त) मलों को हटा दिया वह प्रव्रजित कहलाता है।

389. न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धि ब्राह्मणस्स हन्तारं ततो धि यस्स मुञ्चति ॥७॥

ब्राह्मण पर प्रहार करे; (ब्राह्मण को चाहिये कि) प्रहारकर्त्ता पर कोप न करे। ब्राह्मण पर प्रहार करनेवाले को धिक्कार है, लेकिन उससे अधिक धिक्कार है, उस ब्राह्मण को जो प्रहार-कर्ता पर कोप करे।

390. न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो
वदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति
ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं ॥८॥

ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं, जो वह प्रिय (वस्तुओं) से मन को हटा लेता है; जहाँ जहाँ मन हिंसा से विमुख होता है, वहाँ दुःख शान्त होता ही है।

391. यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि दुक्कतं।
संवुतं तीहि ठानेहि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥९॥

जिसके शरीर, वाणी तथा मनसे कोई पाप नहीं होता, जो इन तीनों स्थानों में संयत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

392. यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्धदेसितं ।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तंव ब्राह्मणो ॥१०॥

जिस उपदेशक से बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म जाने उसे वैसे ही नमस्कार करे, जैसे ब्राम्हण अग्नि होत्र को ।

393. न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है; जिसमें सत्य और धर्म हैं, वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है ।

394. किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहणं बाहिरं पुरिमज्जसि ॥१२॥

हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ ?) और मृग चर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है ।

395. पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१३॥

जो फटे–पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो पतला दुबला है, जिसकी नसें दिखाई देती हैं, जो वन में अकेला ध्यान करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

396. न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्तिसंभवं ।
'भो वादी' नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो ।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१४॥

मैं ब्राह्मणी–माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता । यदि वह सम्पन्न होता है, तो उसे 'भो' से सम्बोधन किया जाता है । जिसके पास कुछ नहीं है, और जो कुछ नहीं लेता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

397. सब्बञ्ञोजनं छेत्वा यो वे न परितस्सति ।
सङ्गातिगं विसञ्ञूत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१५॥

जो सब बन्धनों को काटता है, जो निर्भय है, जो संग और आसक्ति से रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

398. छेत्वा नद्धिं वरतञ्च सन्दामं सहनुक्कमं ।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।१६।।

नद्धि, रस्सी, पगहे और मुंह पर बांधने के जाले को काट, जुये को फेंक, जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

399. अक्कोसं वधबन्धञ्च अतूट्ठो यो तितिक्खति ।
खन्तिबलं बलानीकं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।१७।।

गाली, बध और बन्धन को जो बिना चित्त को दूषित किए सहन करता है, क्षमा-बल ही जिसकी सेना का सेना-पति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

400. अक्कोधनं वतवन्तं सीलवन्तं अनुस्सदं ।
दन्तं अन्तिमसारीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।१८।।

जो अक्रोधी है, जो व्रती है, जो सदाचारी है, जो तृष्णा-रहित है, जो संयमी है, जो अन्तिम शरीरधारी, है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

401. वारिपोक्खरपत्तेव आरग्गेरिव सासपो
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।१९।।

कमल के पत्ते पर पानी की बुंद और आरे की नोंक पर सरसों के दाने की भांति जो काम-भोगों में अलिप्त रहता है, उसें मै ब्राह्मण कहता हूं ।

402. यो दुक्खस्स पजानाति इधेव खयमत्तनो ।
पन्नभारं विसञ्ञुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२२।।

जो इसी जन्म में अपने दु:ख के क्षय को जानता है, जिसने अपना भार उतार दिया है, जो आसक्ति-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

403. गम्भीरपञ्ञं मेधाविं मग्गामग्गस्स कोविदं ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२१।।

जो गम्भीर प्रज्ञावाला है, जो मेधावी है, जो मार्ग—अमार्ग को पहचानता है, जिसने उत्तम अर्थ को प्राप्त कर लिया है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

404. असंसट्ठं गहट्ठेहि अनागरेहि चूभयं ।
अनोकसारिं अप्पिच्छं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२२।।

जो गृहस्थ और प्रव्रजित दोनों से अलिप्त रहता है जो इच्छा—रहित हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

405. निधाय दण्डं भुतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२३।।

जो चर—अचर सभी प्राणियों की हिंसा से विरत हो, न किसी को मारता हैं न मारने की प्रेरणा करता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

406. अविरुद्धं विरुद्धेसु अत्तदण्डेसु निब्बुतं ।
सादानेसु अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२४।।

जो विरोधियों में अविरोधी, जो दण्ड धारियों में दण्ड त्यागी, जो संग्रह करनेवालों में असंग्रही है; उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

407. यम्स रागो च दोसो च मानो मक्खो च पातितो ।
सासपोरिव आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२५।।

जिस (के चित्त) से राग द्वेष, मान और डाह ऐसे ही गिर पडे हैं, जैसे आरे के ऊपर से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

408. अकक्कसं विञ्ञापनिं गिरं सच्चं उदीरये ।
याय नाभिसजे कञ्चि तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।२६।।

जो अकर्कश, विषय को स्पष्ट करनेवाली तथा सच्ची वाणी बोलता हैं, जिससे किसीको पीडा नहीं पहुंचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हुं ।

409. योध दीघं वा रस्सं वा अणुं थूलं सुभासुभं ।
लोके अदिन्नं नादियति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

चाहे लम्बी हो, चाहे छोटी, चाहे मोटी हो, चाहे पतली, चाहे अच्छी हो, चाहे बुरी, जो संसार में किसी भी चीज की चोरी नहीं करता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

410. आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मिं लोके परम्हि च ।
निरासयं विसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

इस लोक और परलोककी (किसी चीज में) जिसकी इच्छा नहीं है, जो इच्छा–रहित है, जो आसक्ति–रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

411. यस्सालया न विज्जन्ति अञ्ञाय अकथंकथी ।
अमतोगधं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२९॥

जो आसक्ति–रहित है, जो जानकर होने से संशय–रहित है, जिसने गाढे अमृत को पा लिया है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

412. योध्र पुञ्ञञ्च पापञ्च उभो सङ्गं उपच्चगा ।
असोकं विरजं सुद्धं पमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३०॥

जो इस संसार में पुण्य और पात दोनो से परे है, जो शोकरहित हैं, जो निर्मल है, जो शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

413. चन्दंव विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।
नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३१॥

जो चन्द्रमा की भाँति विमल, शुद्ध और स्वच्छ है, जिसकी भवतृष्णा नष्ट हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

414. यो इमं पलिपथं दुग्गं संसारं मोहमच्चगा ।
तिण्णो पारगतो झायी अनेजो अकथंकथी ।
अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

जिसने इस दुर्गम संसार (जन्म–मरण) के चक्कर में डालनेवाले मोह–स्वरूप उलटे मार्ग को त्याग दिया, जो तीर्ण हो गया. जो पार कर गया, जो ध्यानी है, जो स्थिर है, जो संशय रहित है, जिसने उपादान रहित को प्राप्त कर लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

415. योध कामे पहत्वान अनागारो परिब्बजे ।
कामभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३३॥

जो काम भोगों को छोड बेघर हो प्रवजित हो गया है, जिसका काम–भव नष्ट हो गया है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

416. योध तण्हं पहत्वान अनागारो परिब्बजे ।
तण्हाभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३४॥

जो तृष्णा को छोड बेघर प्रव्रजित हो गया है, जिसका तृष्णाभव नष्ट हो गया है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

417. हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा ।
सब्बयोगविसंयुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३५॥

जिसने मानुषी भोगों को छोड दिया, दिव्य भोगों को भी छोड दिया जो सभी भोगों के प्रति अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

418. हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतीभूतं निरुपधिं ।
सब्बलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३६॥

जिसने रति और अरति को छोड दिया, जो शीत हो गया, जो क्लेश–रहित हैं, जिस वीर ने सारे लोक को जीत लिया, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

419. चुतिं यो वेदि सत्तानं उपपत्तिञ्च सब्बसो ।
असत्तं सुगतं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३७॥

जो प्राणियों की मृत्यु तथा उत्पत्ति को भले प्रकार जानता है, जो आसक्ति–रहित सुगति प्राप्त बुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

420. यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३८॥

जिसकी गति को न देवता जानते हैं, न गन्धर्व और न मनुष्य, जो क्षीण-आस्रव है, जो अर्हत् है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

421. यस्स पुरे च पच्छा च मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

जिसकी अतीत, वर्तमान या भविष्य में कहीं कुछ आसक्ति नहीं है, जो परिग्रह-रहित, आदान-रहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

422. उसभं पवरं वीरं महेसिं विजिताविनं।
अनेजं नहातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

जो श्रेष्ठ है, जो प्रवर है, जो वीर है जो महर्षि है, जो विजेता है, जो स्थिर है, जो स्नातक है, जो बुद्ध है-- उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

423. पुब्बेनिवासं यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति।
अथो जातिक्खयं पत्तो अभिञ्ञावोसितो मुनि।
सब्बवोसितवोसानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

जो पूर्व-जन्म को जानता है, जो स्वर्ग और नरक को देखता है, जिसका (पुनः) जन्म क्षीण हो गया, जो अभिज्ञावान् है, जिसने निर्वाण प्राप्त कर लिया हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

● ●

गाथा – सूची

● ●

शब्द – सूची

पृ. १. धर्म–बुद्ध के उपदेश में धर्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यहां धर्म शब्द से वेदना, संज्ञा तथा संस्कार इन तीन अरूप-स्कन्धों का ग्रहण है।

पृ. २. सुभाभावना–काम–भोगों को ही सब कुछ समझने की चेतना।

पृ. २, असुभाभावना–शरीर की गन्दगी का ध्यान, जिससे काम–भोगमय जीवन से अरुचि हो। इस ध्यान के दस प्रकार हैं।

पृ. २. मार–इन्द्र से ऊपर और ब्रह्मा से नीचे का देवता, जिसे वैदिक साहित्य में प्रजापति कहते हैं। (२) राग, द्वेष, मोह आदि मन की दुर्वृत्तियाँ, जो सत्य के मार्ग में बाधक होती हैं, उन्हें ही रूपक मानकर मार नाम का एक देवता माना गया है।

पृ. ७. आर्य–स्त्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामि तथा अर्हत (जीवन्मुक्त)।

पृ. १३. शैक्ष–स्त्रोतापन्न, सकृदागामी, अनागामी–पद प्राप्त व्यक्ति को, जो अभी अर्हत नहीं हुआ शैक्ष कहते हैं, क्योंकि वह अभी शिक्षणीय हैं।

पृ. २३ सबोधि अङ्ग स्मृति, धर्म–विचय, वीर्य (उद्योग) प्रीति, प्रश्रब्धि (शान्ति), समाधि तथा उपेक्षा।

पृ. २५. आस्रव–(मल) (१) कामास्रव (काम भोग–सम्बधी इच्छा), भवास्रव (भिन्न–भिन्न लोकों में जन्म लेने की इच्छा) दृष्टयास्रव (गलत धारणा), तथा अविद्यास्रव।

पृ. ४५. स्रोतापन्न–आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर आरुढ़ व्यक्ति जिसका अपने लक्ष्य तक पहुंचना निश्चित है।

पृ. ४६. अपद–रागादि से मुक्त।

पृ. ६२ तथागत–बुद्ध–तथा–गत वा तथा आगत।

पृ. ६६. आर्य–सत्य–दुःख, दुःख समुदय, दुःखनिरोध तथा दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा।

पृ. ६६. चक्षुमान–पांच प्रकार के ज्ञान (चक्षु) से युक्त।

पृ. ६६. अष्टांगिक मार्ग–(१) सम्यक्दृष्टि (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वाणी, (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीविका, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

पृ. ६८. सुगत–सम्यक् गमन वा सम्यक् गति वाले बुद्ध।

पृ. ७१. कायानुस्मृति शरीर और शारीरिक कर्मों के प्रति जागरूकता।

पृ. ७५. आत्म–दृष्टि–शरीर और मन के परे 'आत्मा' नाम की किसी नित्य–सत्ता को मानना।

पृ, ७५. उच्छेद–दृष्टि–मरण उपरान्त और जन्म से पूर्व किसी प्रकार के अस्तित्व को न मानना।

पृ. ७५. पांच उपादान स्कन्ध–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान।

पृ. ७५. पांच आवरण–पांच नीवरण (१) कामेच्छा, (२) व्यापाद, (३) स्त्यानमृद्ध, (४) औद्धत्य–कौकृत्य, (५) विचिकित्सा।

पृ. ७९. वीरण–अमर–बेल।

पृ. ८०. छत्तीसश्रोत–चक्षु, स्रोत्र आदि १८ अन्दरूनी तथा रूप, शब्द आदि १८ बाहरी–कुल ३६ स्रोत।

पृ. ८३. धर्म—काम-लोक रूप-लोक तथा अरुप-लोक करके त्रिभूमिक धर्म ।

पृ. ८७. पांच को छेदे-(१) सत्काय दृष्टि, (२) विचिकित्सा सन्देह, (३) शींलव्रत-परामर्श, (४) काम-राग, (५) रुप राग ।

पृ. ८७. पांच को छोडे- (१) अरूप-राग, (२) प्रतिघ, (३) मान, (४) औद्धत्य (५) अविद्या ।

पृ. ८७. पाँच की भावना करे-श्रद्धा आदि पांच इन्द्रियां ।

पृ. ८७. पांच को लांघ जाय- (१) राग, (२) द्वेष, (३) मोह, (४) मान, (५) दृष्टि ।

पृ. ९६. कामभव- (१) वस्तु-काम (-वस्तुओं की कामना), (२) क्लेश-काम (चित्त की असद्बृत्तियों को सन्तुष्ट करने की कामना)

पृ. ९६. तृष्णाभव-छः इन्द्रियों के भोगों की तृष्णा ।

● ●

"Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.

The land and pepole would be enveloped in peace.

The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.

Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.

People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.

There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share."

~ THE BUDDHA SPEAKS OF
THE INFINITE LIFE SUTRA OF
ADORNMENT, PURITY, EQUALITY
AND ENLIGHTENMENT OF
THE MAHAYANA SCHOOL ~

The Teachings of Great Master Yin Guang

Whether one is a layperson or has left the home-life, one should respect elders and be harmonious to those surrounding him. One should endure what others cannot, and practice what others cannot achieve. One should take others' difficulties unto oneself and help them succeed in their undertakings. While sitting quietly, one should often reflect upon one's own faults, and when chatting with friends, one should not discuss the rights and wrongs of others. In every action one makes, whether dressing or eating, from dawn to dusk and dusk till dawn, one should not cease to recite the AMITABHA Buddha's name. Aside from Buddha recitation, whether reciting quietly or silently, one should not give rise to other improper thoughts. If wandering thoughts appear, one should immediately dismiss them. Constantly maintain a humble and repentful heart; even if one has upheld true cultivation, one should still feel one's practice is shallow and never boast. One should mind one's own business and not the business of others. Only look after the good examples of others instead of bad ones. One should see oneself as mundane and everyone else as Bodhisattvas. If one can cultivate according to these teachings, one is sure to reach the Western Pure Land of Ultimate Bliss.

Homage to Amitabha! Amitabha!

With bad advisors forever left behind,
From paths of evil he departs for eternity,
Soon to see the Buddha of Limitless Light
And perfect Samantabhadra's Supreme Vows.

The supreme and endless blessings
of Samantabhadra's deeds,
I now universally transfer.
May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of Limitless Light!

~ The Vows of Samantabhadra ~

I vow that when my life approaches its end,
All obstructions will be swept away;
I will see Amitabha Buddha,
And be born in His Western Pure Land of
Ultimate Bliss and Peace.

When reborn in the Western Pure Land,
I will perfect and completely fulfill
Without exception these Great Vows,
To delight and benefit all beings.

~ The Vows of Samantabhadra
Avatamsaka Sutra ~

TAKING REFUGE IN THE TRIPLE JEWELS

To the Buddha I return and rely,
returning from delusions and
relying upon Awareness and Understanding.

To the Dharma I return and rely,
returning from erroneous views and
relying upon Proper Views and Understanding.

To the Sangha I return and rely,
returning from pollutions and disharmony and
relying upon Purity of Mind and
the Six Principles of Living in Harmony.

Be mindful of Amitabha!
Namo Amitabha!
Homage to Amita Buddha!

May every living being, drowning and adrift,
Soon return to the Pure Land of Limitless Light!

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA
南無阿彌陀佛

【印度文 HINDI：法句經】
財團法人佛陀教育基金會　印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web: m.budaedu.org
This book is strictly for free distribution, it is not to be sold.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।
Printed in Taiwan
3,000 copies; April 2015
IN011-13129